मैथिली-साहित्य

[संक्षिप्त परिचय]

लेखक
श्री वैजनाथ सिंह 'विनोद'

प्रकाशक
श्रीअजन्ता प्रेस (प्राइवेट) लिमिटेड
पटना-४

मूल्य २॥)

मुद्रक

श्री राजेश्वर झा

श्रीअजन्ता प्रेस (प्राइवेट) लिमिटेड

पटना–४

विषय-सूची

श्रद्धेय

पण्डित अमरनाथ झा

की

पुण्य स्मृति

में

स्व० श्री झा साहब की प्रेरणा के अनुसार मैंने श्री प आनन्द मिश्र (प्राध्यापक मैथिली विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना) की देखरेख में इस किताब का लिखना आरभ किया। थोड़ा-थोड़ा लिखता था, पटना आकर श्री पं० आनन्द मिश्रजी को दिखाता था, वे उसमें अपेक्षित संशोधन के साथ आगे के लिए सुझाव देते थे। इस प्रकार धीरे-धीरे यह किताब तैयार हुई। इसके बाद स्व० झा साहब की सलाह के अनुसार श्री मिश्रजी ने इसकी टंकित प्रति को पुन देखा। यही नहीं, उन्होंने उदारतापूर्वक इसके अन्तिम प्रूफ को देखकर, इसे प्रामाणिकता प्रदान करने की कृपा की। इस प्रकार इस किताब मे जो कुछ श्रेष्ठ है, वह श्री प० आनन्द मिश्रजी की कृपा का प्रसाद है। वह उम्र मे मुझसे काफी छोटे हैं, पर ज्ञान में बड़े। अतः मैं श्री पं० आनन्द मिश्रजी के प्रति आभार प्रदर्शित करता हूँ।

श्री डॉ० राजवली पांडेयजी ने इसके प्राचीन इतिहास को देखकर अपेक्षित सुझाव दिये हैं। अत. उनके प्रति भी मैं कृतज्ञता प्रकट करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। मेरे प्रिय साथी श्री जयशंकर मिश्रजी ने फुरसत के समय मेरे लिखे अंशों को टंकित कर मेरा उत्साह बढ़ाया है। और श्री पं० जयनाथ मिश्रजी ने इसे प्रकाशित कर हिंदी भाषा-भाषी जनता को मैथिली साहित्य का परिचय कराने का पुण्य-कार्य किया है। अत. इनके प्रति भी मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

इस किताब का उद्देश्य साधारण जनता के निकट मैथिली साहित्य का परिचय प्रस्तुत करना है। मैं समझता हूं कि यह परिचय ऐतिहासिक क्रम से भी ठीक है। इसके लिखने में अनेक विद्वानों के ग्रंथों और लेखों से सहायता ली गई है। अत उनके प्रति भी कृतज्ञता प्रकट करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूं।

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
वसन्त पचमी स० २०१२
१६-२-५६

वैजनाथ सिंह 'विनोद'

भूमिका

श्री 'विनोद' जी हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ लेखक हैं। मेरा उनसे परिचय स्व० आचार्य नरेन्द्रदेवजी के यहाँ हुआ था। स्व० आचार्य जी ने, जब काशी विश्वविद्यालय के उपकुलपति थे, एक सांस्कृतिक सभा का आयोजन किया था; जिसमें पहले-पहल श्री 'विनोद' जी से मेरा साक्षात्कार हुआ तथा वहीं ये मिथिला-भाषा की ओर आकृष्ट हुए। उसके कुछ दिनों के बाद 'हिन्दी का वृहत् इतिहास' के सिलसिले में ये पटने आये और स्व० अमरनाथ झा जी से मिले। उनके सामने इन्होंने मैथिली-साहित्य पर एक परिचयात्मक पुस्तक लिखने की बात चलायी तथा स्व० झा जी के सुझाव पर मैं यथासाध्य इनको सहायता देने लगा। अब यह पुस्तक छपकर तैयार है। इस पुस्तक के गुण-दोष का विवेचन मेरा विषय नहीं है, कारण वह तो सहृदय पाठकों पर निर्भर करता है।

सुधी समाज सदा से समस्याओं के समाधान में सावाक्ष रहा है। किसी भी भाषा का जन्म कब हुआ कहना कठिन ही नहीं, असम्भव भी है। यद्यपि कुछ विद्वान भाषाओं की जन्मपत्री ढूँढने में व्यस्त रहे हैं; किन्तु वे बराबर असफल ही हुए हैं। लिखित उपलब्ध साधनों पर केवल इतना ही कहा जा सकता है कि अमुक समय में अमुक भाषा के शब्द प्रचलित थे। यही हालत सभी भाषाओं की है। मैथिली के विषय में भी विद्वानों ने छानबीन की है। इस भाषा के शब्द ईस्वी सन् नवीं शताब्दी से मिलते हैं। इस विषय पर डा० श्री सुभद्र झा ने अपनी थीसिस "फॉरमेशन ऑफ मैथिली लैंग्वेज" में विशेष प्रकाश डाला है।

भारतीय साहित्यों का आरम्भ अन्धकार में विलीन है। मैथिली की भी यही दशा है। साहित्य मानव जीवन का प्रतिबिम्ब है और जिस जीवन का प्रतिबिम्बन इस साहित्य में होता आया है उसके प्राचीन इतिहास का पर्यालोचन करने से ऐसा प्रतीत होता है कि लिच्छवी प्रभृति भिन्न-भिन्न सघ मिथिला में बुद्ध से पहले ही से व्याप्त थे। बौद्ध-युग का प्रभाव उनलोगो पर यथेष्ट पडा, जैसा कि तत्कालीन साहित्य से ज्ञात होता है। बुद्ध के साथ ही भारत में लोक-भाषाओ का उदय हुआ, कारण वे इस नीति का पालन करते थे कि लोक-भाषा में ही उपदेश दिया जाय। सबसे प्राचीन-भाषा-कविता का पता हमें "बौद्ध-गान ओ दोहा" में मिलता है। यद्यपि इसकी भाषा ऐसी है कि मैथिली, बङ्गला, आसामी, हिंदी, मगही भोजपुरी आदि सभी इसे अपना पूर्व रूप घोषित करती है। उक्त भाषाओं के भाषा शास्त्रिओं ने इस विषय पर अनेक ग्रथों का प्रणयन भी किया है; किन्तु समस्या अभी तक वही है। उन पदों के परिशीलन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उस समय तक मैथिली, हिन्दी, बङ्गला प्रभृति देश-भाषाओ का विकास नही हुआ था। बिहार, बगाल, आसाम, उडीसा आदि प्रान्तो में प्राच्य अपभ्रश का प्रचार था। उस समय में बौद्ध धर्म के तत्कालीन सिद्धान्त, जिसे 'वज्रयान' कहते है और जिसका विकास तन्त्र के रूप में हुआ था, इन्ही सिद्धों द्वारा लोक में प्रचार किया गया। सिद्धो ने इसी प्राच्य अपभ्र श को अपनी अभि-व्यक्ति का माध्यम बनाया। समय के साथ भाषा में भी परिवर्त्तन का आना स्वाभाविक है। प्राच्य अपभ्र श से क्रमिक मैथिली, बङ्गला आदि का विकास हुआ।

भारत कृषि-प्रधान देश है। यहां की आत्मा गांवों में वास करती है। ग्रामीणों की सारी आशाएँ-आकाक्षाएँ खेतों में ही निवास करती ह। ग्रामीणों को, अत, कृषि-सम्बन्धी ज्ञान आवश्यक है, अन्यथा उनका जीवन-यापन कठिन हो जाएगा। भारत के सभी प्रान्तो में कृषि-विषयक रचनाएँ मिलती हैं। श्री रामनरेश त्रिपाठी ने ऐसी उक्तियो का सग्रह

'ग्राम-साहित्य' के तृतीय भाग में किया भी है। मिथिला में भी ऐसी रचनाएँ प्रचुर मात्रा में मिलती हैं। डाक का नाम इसमें अत्यन्त प्रसिद्ध है। डाक की उक्तियों का संग्रह एक अत्यन्त प्राचीन पोथी के आधार पर श्री जीवानन्द ठाकुर ने प्रकाशित भी किया है। डाक ने कृषि-सम्बन्धी सूक्तियों का प्रणयन तो किया ही साथ ही उन्होंने लोगों को आवश्यक ज्योतिष का ज्ञान भी कराया तथा कुछ नीति-विषयक सूक्ति भी कही। डाक की भाषा यद्यपि घिसती-घिसती कुछ आधुनिकता ले चुकी है, किन्तु उसे अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इसका रूप अपभ्रंश के बहुत करीब है।

मैथिली के विकसित रूप का दर्शन हमें चौदहवीं शताब्दी में होता है। उस समय का एक गद्य-ग्रंथ हमें 'वर्ण रत्नाकर' के रूप में मिलता है। इसके लेखक हैं ज्योतिरीश्वर ठाकुर। संस्कृत-साहित्य में इनका नाम 'धूर्त्त-समागम' तथा 'पंच-सायक' के लेखक के रूप में प्रसिद्ध है। मैथिली को इन्होंने 'वर्ण रत्नाकर' जैसा ग्रंथ देकर अपना नाम अमर कर दिया है। भारतीय भाषा साहित्य में इतना प्राचीन गद्य ग्रंथ किसी अन्य भाषा में नहीं मिलता। इससे पहले का एक ग्रंथ 'ज्ञानेश्वरी' उपलब्ध है जो मराठी में है, किन्तु उसका विषय दर्शन है, साहित्य नहीं। 'वर्ण रत्नाकर' की शैली को देखकर विद्वानों का अनुमान है कि उसने बहुत पहले से ही इस भाषा में गद्य लिखा जा रहा होगा। चौदहवीं शताब्दी का समाज, तत्कालीन आचार-विचार आदि के परिचय के लिए यह ग्रंथ अमूल्य है। इसकी तुलना, अतः, संस्कृत के 'मानसोल्लास' तथा फारसी के 'आईने अकबरी' से की जाती है। इस ग्रंथ का उद्देश्य यद्यपि कवियों को साहाय्य देना था, किन्तु प्रसंगवश अनेक ऐसे विषयों का भी वर्णन इसमें किया गया है जिससे तत्कालीन समाज की एक झाँकी हमें मिल जाती है। यह ग्रंथ मैथिली की साहित्यिक परंपरा का प्रतीक है तथा इससे यह भी स्पष्ट है कि जब भारत की अन्य भाषाएँ साहित्यिक अभिव्यक्ति के लिए तथा उचित भविष्य में प्रौढ़ता प्राप्त करने के लिए

प्रयास कर रही थीं तभी मैथिली एक प्रौढ साहित्यिक भाषा हो चुकी थी तथा इसकी शैली भी विकसित हो गई थी।

ज्योतिरीश्वर के वाद मैथिली के साहित्याकाश में विद्यापति रूपी सूर्य का उदय हुआ। उन्होंने राग-ताल-लयाश्रित गीतों की रचना कर अपना नाम केवल मैथिली में ही नही, प्रत्युत् भारतीय साहित्य में अमर कर लिया। ये मैथिल-कोकिल कहे जाते हैं। किन्तु ये साधारण कोकिल नही हैं। इनकी कूक ने बङ्गाल को मुग्ध कर डाला, हिन्दी-ससार में वसन्त बसा दिया। इन्होंने प्रारम्भ में अपभ्रश में रचना की तथा उसे 'देसिल वएना' कहकर सम्मानित किया। किन्तु विद्यापति के समय तक यहाँ मैथिली पूर्ण विकसित हो चुकी थी। फलत. अपनी 'कीर्त्तिलता' तथा 'कीर्त्तिपताका' को अवहट्ट में लिखने के पश्चात् महाकवि ने वास्तविक 'देसिल वएना' में गीतों की रचना प्रारम्भ की। वे गीत इतने प्रभावोत्पादक सिद्ध हुए कि समस्त आर्यावर्त्त में एक नवीन शैली, एक नवीन आदर्श की स्थापना हो गयी। वगाल में तो उस भाषा के अनुकरण पर एक नवीन भाषा 'व्रजवूलि' का जन्म हुआ, जिसमें अनेक कवियों ने अपने मार्मिक उद्‌गार प्रकट किए। 'व्रजवूलि' साहित्य का विशेप अध्ययन डा० श्री सुकुमार सेन न अपनी 'हिस्ट्री ऑफ व्रजवूलि लिटरेचर' नामक पुस्तक में उपस्थित किया है। विद्यापति ने विशेषत. शृगारिक गीतो की रचना की जिनमें नायक श्रीकृष्ण हैं। इसके अतिरिक्त शान्त रस के गीत भी इनके मिलते हैं। शिव-विपयक 'नचारी' अत्यन्त प्रसिद्धि पा चुके हैं जिसमें हास्य तथा अद्‌भुत रस प्रचुर मात्रा में प्राप्त होते हैं। उत्प्रेक्षा के विन्यास में तो ये वेजोड हैं। ये मैथिली-साहित्य के प्राण कहे जाते हैं। इस विषय पर श्री 'विनोद' जी ने काफी प्रकाश डाला है। (देखें-पृ० २३ से ६६ तक।)

विद्यापति ने जिस परम्परा का जन्म दिया वह उत्तरोत्तर अग्रसर होती रही तथा इस परम्परा में गोविन्ददास झा, रामदास झा, हर्षनाथ

दि का नाम आदर से लिया जाता है। इन लोगों की रचनाओं में
त्रय की दृष्टि से भेद कम है। हाँ, विषय के उपस्थापन में भेद अवश्य
दृगोचर होता है।

सत्रहवीं शताब्दी से मैथिली-साहित्य में नाटकों का समय आता है।
हवी शताब्दी से लेकर उन्नीसवी शताब्दी तक अनेक नाटक लिखे
े। नाटकों के केन्द्र मुख्यतः तीन थे—मिथिला, नेपाल तथा
साम। स्थान-भेद से इनमें भिन्नता भी परिलक्षित होती है।
टकों का विषय प्रधानत पौराणिक रहा तथा लेखकों मे उमापति,
नपाणि, हर्षनाथ, जगज्जोतिर्मल्ल तथा शंकरदेव के नाम प्रधान हैं।
टक पर श्री विनोदजी ने काफी प्रकाश डाला है। ग्रन्थ का एक तिहाई
श नाटकों से ही सम्बन्धित है। (देखें पृ० ६७ से १३३ तक।)

मैथिली-साहित्य का आधुनिक काल अथवा पुनरुत्थान काल कवि
र चन्दा झा से आरम्भ होता है। वे मैथिली-साहित्य के 'व्यास' कहे
ते हैं। 'मिथिला-भाषा-रामायण' की रचना कर इन्होंने अपने को
मर बनाया। विद्यापति के पश्चात् इतना यशस्वी दूसरा कोई कवि
ही हुआ। मैथिली को लोकप्रिय बनाने म इनका योगदान किसी से
ी कम नही है। ये नवीन युग के प्रवर्तक कहे जाते हैं। मैथिली में
स्कृत-बहुला रचना अपने चरम तक पहुँच चुकी थी, जिसका परिणाम
ह हुआ कि यह एक वर्ग-विशेष तक सीमित हो गयी थी। चन्दा झा
मैथिली को इस बन्धन से मुक्त किया। इन्होंने जन-साधारण को
ान में रखकर अपनी लेखनी उठायी। शृंगार-रस सम्बन्धी कविता
की बहुत कम है। इनके गीत मुख्यत सीताराम सम्बन्धी अथवा
ष-विषयक हैं, जिनमें भक्त-हृदय का उद्गार ही विशेष है। धर्म-
ं के ह्रास से विपद्ग्रस्त देश-दशा-वर्णन इनका अत्यन्त रोचक
ा है। कहीं-कही मानव-जीवन की नीचता का चित्रण भी मार्मिक
ारा है। छन्द में ये निष्णात थे, जिसका परिचय हमें रामायण

द्रोह सनातन, छाड़ि असुर-सुर
बनि रहलै अछि भाइ ॥
आब न अजीगर्त भूखें सुत
बेचत, बनत कसाइ ।
मुनि वशिष्ठ केर वाछी मारल
जाएत न हएत लड़ाई ॥
विश्वामित्र न भूखें व्याकुल
चोर जकाँ घर-घर छुछुएता ।
चूसि सकत नहि शोणित रावण
क्यो न बनत नृप विश्व विजेता ॥" इत्यादि ....

प्राचीन कवियो द्वारा उपेक्षित विषयो पर भी इधर के कवियो ने लेखनी उठायी है । श्री 'मधुप' जी इस दिशा में अच्छी प्रगति कर रहे हैं । उनकी कुछ रचनाओ—'झखरल गाछी' 'पथित पीक', 'छुतहर' तथा 'घसल अठन्नी'—ने काफी प्रसिद्धि प्राप्ति की है ।

काव्य में व्यंग्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है । व्यग्य लिखने में अभी प्रो० श्री तन्त्रनाथ झा तथा श्री 'अमर' का नाम समादर से लिया जाता है । श्री तन्त्रनाथ झा ने एक ओर तत्सम शब्द-प्रधान, किन्तु माइकेल मधुसूदन के अमित्राक्षर छद से प्रभावित होकर 'कीचक वध' की रचना की है तो दूसरी ओर प्राचीन अन्योक्ति की शैली पर उपहासात्मक काव्यों की भी सृष्टि की है । अग्रेजी में जिसे 'सेटायर' कहते हैं उसे ही मैंने उपहासात्मक काव्य कहा है । देखिए इनकी एक कविता 'वर्षा घोष' का कुछ अश—

'गावह वेङ गावह' करह कलगान अपन,
जी के जुडाए लएह, करह मिहन्ता पूर,

की करबहुक लोक लए !
ठनका सॅ वहीर लोकक कान में
कथी लए कनेको करतैक असरि
कतबो कए प्रयास करबह तों कर्कश नाद
किन्तु हे मन्डूक !
देखह कतराक झाड़ लग
दबकल केंचुआएल ढोंढ़
प्रसन्न छहु गान सूनि
तकइत छहु तोहरहि दिश ॥

श्री अमर' जी मधुर हास्य एव मर्मच्छदी व्यग्य के लिए इस समय प्रायः सबसे प्रसिद्ध कवि हैं । ठठ भाषा का प्रयोग इन्हें लोकप्रिय बनने में सहायक हुआ है । दो कविता-सग्रह 'गुदगुदी' तथा 'युगचक्र' अत्यन्त लोकप्रिय सिद्ध हुए हैं । कविवर सीताराम झा जी अभी ठेठ भाषा के प्रयोग करने में अच्छा स्थान रखते है, किन्तु देशदशा की विषमता को 'अमर' जी ने जिस व्यंग्य के साथ अपने 'युगचक्र' में प्रदर्शित किया है वैसा प्राय. कविवर 'झा' जी में भी दृष्टिगोचर नहीं होता । वैसे श्री सीताराम झा प्रायः अभी वृद्धितम कवि हैं तथा मैथिली को जनप्रिय बनाने में उनका सहयोग किसी से भी कम नहीं है ।

काव्य के क्षेत्र में अभी नवीन नवीन प्रयोग चल ही रहे हैं । अनेक नवीन विषयों का समावेश हो रहा है । प्राचीनता तथा नवीनता के बीच में खडे श्री 'सुमन' तथा श्री ईशनाथ झा अगर एक ओर मध्य का मार्ग ढूंढने में व्यस्त हैं तो दूसरी ओर श्री ब्रजकिशोर वर्मा, श्री गोविन्द झा, श्री 'आरसी', श्री राघवाचार्य, श्री जीवनाथ झा, श्री भवनाथ आदि नित नूतन प्रयोग करने में सलग्न हैं । कविता की धारा नित्य अग्रसर होती जा रही है । कौन कह सकता है कि यह किधर और कहाँ तक जायगी ?

कथा एव उपन्यासों में भी नवीन प्रयोग चल रहे हैं। प्रो० श्री उमानाथ झा जी का कथा-सग्रह 'रेखाचित्र' मैथिली कथा-साहित्य की अमूल्य निधि है जिसमें विद्वान् लेखक ने पाश्चात्य 'टेकनीक' पर अपनी कहानियो को लिखा है। श्री उपेन्द्रनाथ झा 'व्यास' का प्रयास भी इस दिशा में काफी सफल रहा है। इनकी कथाओं में मिथिला की आत्मा बोलती है। ये उपन्यासकार भी अच्छे हैं। इनका लिखा 'कुमार' काफी लोकप्रिय सिद्ध हो चुका है। उपन्यास के क्षेत्र में श्री योगानन्द झा ने 'भलमानुस' लिखकर समाज की कुरीतियों की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया है। इधर इन्होंने पौराणिक 'च्यवन' उपाख्यान को नाटकीय रूप देकर प्रकाशित किया है, जिसमें पौराणिक कथा-ककाल में मानवीय भावना एव विचार को अत्यन्त मार्मिक ढग से जोडा गया है। ये कथाकार भी अच्छे हैं, किन्तु लिखते ही कुछ कम हैं। (गद्य के विकास के लिए देखें पृ० १३३-४७ तथा १५९-७२ तक।)

मैथिली-गद्य को सर्वप्रिय बनाने में जितना प्रो० श्री हरिमोहन झाजी का हाथ हैं उतना किसी का नही। इन्होने उपन्यास, कथा आदि लिखकर साहित्य के भडार को भरा है। ये व्यग्य लिखने में बडे ही कुशल हैं। (विशेष विवरण के लिए देखें प० १६४-१६५।)

निवन्ध आदि भी इधर अच्छे-अच्छे लिखे जा रहे हैं। स्व० प० दीनबन्धु झा ने 'मिथिला भाषा विद्योतन' तथा 'मैथिली शब्द-कोष' का निर्माण कर साहित्य की जो सेवा की वह अवर्णनीय हैं। मैथिली को विश्वविद्यालय की उच्च कक्षाओं में स्थान मिल जाने से भी साहित्य में कुछ प्रगति आयी है।

× × ×

श्री 'विनोद' जी ने इस पुस्तक को लिखकर हिन्दी भाषा-भाषियों का जो उपकार किया है उसे कहने की आवश्यकता नही है। हिन्दी साहित्य के विद्यार्थी मैथिली के विषय मे प्राय विद्यापति के नाम तक ही जानते थे। डा० रामकुमार वर्मा ने यद्यपि अपने इतिहास में मैथिली

साहित्य की कुछ चर्चा की है, किन्तु वह कतई पर्याप्त नहीं है। इधर 'राजकमल प्रकाशन' से भारत की विभिन्न भाषाओं का परिचयात्मक इतिहास निकल रहा है। योजना के अन्तर्गत मैथिली का नाम अवश्य है, किन्तु उसका इतिहास अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है। अत. इस दिशा में यह पुस्तक पथ-प्रदर्शक का कार्य करेगी, ऐसा मेरा विश्वास है। इसके साथ ही लोगों को इस बात की भी जानकारी हो जाएगी कि मैथिली-साहित्य में क्या है, उसकी निधि कितनी है! मैथिली की अपनी स्वतंत्र सत्ता है तथा इसमें बहुत पहले से निरवच्छिन्न रूप से साहित्य-सृजन होता आया है।

अन्त में मैं श्री 'विनोद' जी के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापन करता हूँ, जिन्होंने मुझे भूमिका लिखने का भार देकर गौरवान्वित किया है। पुस्तक का आदर सर्वत्र हो, यही मेरी कामना है।

—आनन्द मिश्र

मैथिली-विभाग
पटना-विश्वविद्यालय
२६-३-५६

मिथिला जनपद

अयोध्या के सूर्यवंशी राजा इक्ष्वाकु के पुत्रों में से एक निमि ने इस जनपद में अपना राज्य स्थापित किया, जिसकी राजधानी जयन्त नामक नगर था। निमि की उपाधि विदेह थी। मिथिला शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में डा० सुभद्र झा का एक दूसरा मत है। इसके अनुसार मिथिला शब्द संभवत मिथ –युग्म–से हो सकता है। परन्तु जनपदों के यौगिक अथवा भाषाशास्त्रीय नाम कम मिलते हैं। आधुनिक मिथिला मे प्राचीन युग के विदेह, वैशाली तथा अंग ये तीन जनपद मिले हैं। कथा है कि मिथि ने इस भूमि के प्रत्येक भाग मे अश्वमेध यज्ञ किया। इसलिए यह सब भूमि पावन मानी गई। लोगों का विश्वास है कि जिस सीमा मे यज्ञ संपन्न हुए थे, उसके उत्तर में हिमालय, दक्षिण मे गंगा, पूरब मे कोशी और पच्छिम में गंडक थी। इसी क्षेत्र को मिथिला कहा गया। श्री चन्द्र झा ने इस सीमा का उल्लेख इस पद्य में किया है

गंगा वहथि जनिक दक्षिण दिशि पूर्व कौशिकी धारा।
पश्चिम वहथि गडकी उत्तर हिमवत वल विस्तारा॥
कमला त्रियुगा अमृता धेमुड़ा वागमती कृतसारा।
मध्य वहथि लक्ष्मणा प्रभृति से मिथिला विद्यागारा॥

मिथि की उपाधि जनक. वप्पा, बापू, बाबू, प्रजा का पुत्रवत् पालन करनेवाला. थी। उनके परवर्ती राजाओं ने भी इस उपाधि को धारण किया। इसका फल यह हुआ कि मिथिला के सभी राजा 'जनक' कहलाने लगे।

विदेह के जनकों में कुछ बड़े प्रतापी और यशस्वी हुए। राम के काल में सीरध्वज जनक बड़े प्रसिद्ध थे। रामायण की सीता उन्हीं की पुत्री थीं। उपनिषत्काल में वहीं का राजा जनक विदेह हुआ, जो उपनिषत्काल की विचारधारा का एक नेता था, जिसकी सरक्षता मे याज्ञवल्क्य की वाणी मुखरित हुई। इसकी राजसभा अपने काल की विद्या-परिपद् थी, जिसमे कोसल, कुरुपाचाल, मद्र आदि दूर दूर के जनपदों के यशस्वी दार्शनिक इकट्ठे होते थे, जिनमें उद्दालक आरुणि के शिष्य याज्ञवल्क्य वाजसनेय तथा गार्गी अधिक प्रसिद्ध थे। शतपथब्राह्मण, बृहदारण्यकोपनिषद् तथा महाभारत में जनक को सम्राट् भी कहा गया है, जिससे यह भी सिद्ध होता है कि उपनिषत्काल में ज्ञान अथवा ब्रह्मज्ञान के साथ-साथ राजनीतिक शक्ति का भी जनकों ने संचय किया था। पर महाभारत-युद्ध के समय राजगृह की राजनीतिक शक्ति प्रबल थी। वहाँ मगध-सम्राट् जरासंध था। उस समय मिथिला मे किसी राजपुरुप का पता नहीं लगता। अतः ऐसा ज्ञात होता है कि बहुत प्राचीन काल में पूर्वी भारत मे मिथिला राजशक्ति का भी केंद्र थी। पर महाभारत काल मे पूर्वी भारत में जरासंध नामक प्रबल राजा हुआ था। किन्तु कृष्ण ने अपनी नीति-कुशलता द्वारा उसका नाश करा दिया। पांडवों के काल तक मगध पर पांचाल का प्रभाव था। जनमेजय के बाद कौरवों की शक्ति का ह्रास होने लगा। इस काल में विदेह अथवा

मिथिला जनपद की शक्ति कुछ बढ़ी, इसकी पुष्टि ब्राह्मण-ग्रंथों के अतिरिक्त बौद्ध तथा जैन-साहित्य से भी होती है। पर मिथिला के राजपुरुष राजनीति की अपेक्षा तत्त्ववाद में अधिक उलझे थे। अतः आगे चलकर मगध राजनीतिक दृष्टि से आगे बढ़ गया।

महाभारत-युद्ध के बाद देश में एक राजनीतिक शक्ति नहीं थी। देश में छोटे-छोटे राज्य बन गए थे। कोसल की राज्यशक्ति पहले ही क्षीण हो चुकी थी। अतः कोसल के पूर्वी भाग में छोटे-छोटे गणतंत्रों-शाक्य, कोलिय, मौर्य, मल्ल आदि का विकास हो गया। मगध के बार्हद्रथों से संघर्ष में मिथिला की राज्यशक्ति क्षीण हो चली थी। आगे चलकर उत्तरी बिहार मे नव गणतंत्रों की स्थापना वज्जिसघ के अंतर्गत हुई, जिसमें विदेह भी समिलित हो गया।

बुद्ध और महावीर के पहले वज्जिसंघ[1] की स्थापना हो चुकी थी। लिच्छवि गणतंत्र का नाम भी प्रमुख रूप से आ चुका था। बुद्ध और महावीर-काल की प्राप्त सामग्रियों के आधार पर पंडितो का मत है कि इस समय वज्जिसघ की राजधानी वैशाली थी। जैन तीर्थंकर महावीर ज्ञातिपुत्र होते

---

१. वज्जि [वात्सी + (पुत्र)] संभवत वत्स जनपद से अलग होकर वैशाली चले आये और यहाँ पर गणतंत्र की स्थापना की। वज्जि वत्सगोत्रीय भी हो सकते हैं।

हुए इसी गणसंघ के थे। उनके नामों में वैदेहदत्ता भी एक नाम है जिससे इंगित होता है कि उनकी माता विदेह-कन्या थीं। विदेहदत्ता उनकी माता का नाम था। यह नाम वैसा ही है जैसा सीता का वैदेही। वस्तुतः महावीर की माता वज्जिसंघ की राजधानी वैशाली के गणतंत्री राजा चेटक की पुत्री थीं। इसीलिए त्रिशला का एक नाम विदेहदत्ता भी पड़ा। इस प्रकार बुद्ध के पूर्व मिथिला जनपद में गणतंत्र-पद्धति पर संघ-राज्य की स्थापना हो चुकी थी। किंतु यह व्यवस्था एकाएक उपस्थित नहीं हो गई थी। गणतंत्र-पद्धति की प्रकृति समाज में थी—मिथिला के राजा कराल जनक के अनाचार से क्षुब्ध होकर वहाँ की प्रजा ने उसे मार डाला और गणतंत्र की स्थापना कर दी। इस प्रकार राजतंत्र के कमजोर हो जाने से गणतंत्र को विकास का मौका मिला। लिच्छवियों की शासनप्रणाली ऐसी थी, जिसमें व्यक्ति के स्वातंत्र्य को अधिकाधिक बल मिलता था। इससे सिद्ध होता है कि मिथिला जनपद के लोग स्वाधीन विचारक और उदार थे। कहते हैं, लिच्छवियों के ७७०७ राजा थे। ये सब राजा अपने-अपने गाँव में शायद स्वतंत्र थे, किन्तु राज्य के सामूहिक कार्य का विचार एक परिषद् मे होता था, जिसके वे सदस्य थे। लिच्छवि गणतंत्र की आपसी एकता की प्रशंसा स्वय बुद्ध ने की है। इससे सिद्ध होता है कि मिथिला जनपद में व्यक्ति-स्वातत्र्य के साथ-ही-साथ वहाँ आपसी संगठन भी दृढ़ था।

इस प्रकार तराई के इस मिथिला जनपद में स्थानीय स्वतंत्रता और सामूहिक शासन का सफल प्रयोग हुआ। किन्तु इतना ही नहीं, धर्मनीति और समाजनीति में भी मिथिला जनपद के गणराज्यों में अच्छा काम हुआ। महावीर और बुद्ध दोनों ने मिथिला जनपद में अपने कार्य किए। दोनों को अच्छा समर्थन भी मिला। दोनों ने रूढ़िया और परंपराओं के विरुद्ध समाज मे प्रचार किया, नये मतो का प्रवर्तन किया और सामाजिक समता की घोषणा की। मल्लों और वज्जियों के इस वृहत् सघ ने बहुत दिनों तक मगध की साम्राज्यलिप्सा अथवा राजतत्र शासन पद्धति को सीमित रखा। किन्तु गणतत्रों में गुणों के साथ ही दोष भी थे। ये गणतत्र जातीय कौलीन्य पर आधारित कुछ सामन्तों के थे। अधिकाश जनता भूमिदास थी। गुलामी की प्रथा भी इन गणतत्रों मे थी। शूद्रों, दासो और अर्धदासों को नागरिक सुविधाओं से वंचित रखा जाता था। गणतत्र के सदस्यों में व्यक्तिगत स्वतत्रता थी, पर जबतक उनका आतरिक अनुशासन ठीक था, इस स्वतत्रता से विकास हुआ। आगे चलकर परस्पर की प्रतिद्वंद्विता बढ गई, इससे अविनय बढा। फिर लोभ और कलह की भी वृद्धि होने लगी। इस प्रकार धीरे-धीरे वज्जिसघ अदर से जर्जर हो गया। आगे चलकर मगध-सम्राट् अजातशत्रु ने वज्जिसघ और विदेह पर भी अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। इसके बाद विदेह अथवा मिथिला प्रदेश मगध-साम्राज्य का अधीनस्थ हो गया।

मौर्यों के समय में कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में लिच्छवियों का जिक्र राजशब्दोपजीवी गणों की सूची में किया है। इसमें लिच्छवियों के साथ 'क' प्रत्यय लगा हुआ है लिच्छविक, जिसका अर्थ लघुवाचक है। अर्थात् उस समय लिच्छवियों का महत्त्व बहुत कम हो गया था। ऐसा लगता है कि लिच्छविकगण मगध-साम्राज्य के अधीन शुंगों, कंडवों, आंध्रों तथा कुषाणों के समय में भी बचा रहा।

समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति से मालूम होता है कि वह लिच्छवियों का दौहित्र था, जिसका अर्थ यह हुआ कि उसके पिता चन्द्रगुप्त प्रथम ने किसी लिच्छवि राजकुमारी से विवाह किया था। गुप्त-साम्राज्य के उदय के पूर्व लिच्छविकगण, जिसमें विदेह, वैशाल आदि भी सम्मिलित थे, अपने मूल स्थान उत्तरी बिहार : मिथिला : में रहते थे। उन्हीं की सहायता से समुद्रगुप्त ने पाटलिपुत्र के कोटकुल का विनाश कर मगध-साम्राज्य की प्राप्ति की थी। यही कारण है कि समुद्रगुप्त की प्रशस्ति में लिच्छवियों का उल्लेख गर्व के साथ किया गया है। समुद्रगुप्त के सिक्कों में राजारानी शैली के सिक्कों पर समुद्रगुप्त की माता कुमारदेवी अपने पति चन्द्रगुप्त प्रथम के साथ अंकित है और दूसरी ओर 'लिच्छवय' शब्द है। किन्तु गुप्त-साम्राज्य के विस्तार के साथ-साथ लिच्छवियों की गणशक्ति का भी विनाश हो गया तथा वे गुप्त साम्राज्य से स्वयं अभिभूत होकर उत्तर में खसके और क्रमशः नैपाल

चले गए एवं वहाँ जाकर एकतंत्र राजशक्ति के रूप में उदित हुए।

गुप्त-शासन-काल में प्राचीन वैशाल और विदेह क्षेत्र मिथिला के रूप में एक प्रदेह हो चुके थे। वैशाली मे प्राप्त गोविंद गुप्त की मुद्राओ से यह जान पड़ता है कि उस समय वैशाली एक प्रदेश की राजधानी थी और इस प्रदेश का नाम तीरभुक्ति (किनारे का प्रांत) पड़ चुका था।

गुप्त-साम्राज्य के भंग हो जाने पर जब हर्षवर्धन के समय में पुष्यभूति-साम्राज्य की स्थापना हुई, तो कुछ समय के लिये मिथिला पर भी उसका आधिपत्य कायम हुआ। परन्तु उत्तर गुप्तों के पुनर्जागरण के समय पुष्यभूति-साम्राज्य से निकलकर उसमें समिलित हो गया। उत्तर गुप्तों और गौड़ों का जब संघर्ष छिड़ा तो मिथिला मे कुछ वर्षों तक अराजकता छाई रही। इसके बाद ७४३ ई० के आसपास पालवश के सस्थापक गोपाल ने समूचे मगध, मिथिला और बंगाल को एक सुगठित राज्य बना दिया। कुछ समय तक तो पालवश का शासन मिथिला पर बना रहा, किन्तु बाद में पुन अराजक स्थिति आने लगी। लगभग ९२०—५० ई० के आसपास यशोवर्मा चंदेल ने मगध, मिथिला और गौड पर चढ़ाई की तथा पूर्वी हिमालय तक जाकर वहाँ की कम्बोज बस्ती को हराया। उसके बेटे धग ने लगभग ९५०—९५ ई०

तक अंग (मुंगेर-भागलपुर) पर अपना आधिपत्य बनाए रखा। दसवीं शताब्दी के अंतिम भाग में पालवंशी राजा महीपाल (लगभग ६७५—१०२६ ई०) ने फिर धीरे-धीरे अपने पूर्वजों के राज्य का पुनरुद्धार किया। लगभग ६८४ ई० में पहलेपहल उसने कम्बोज-वंश का अंत कर उत्तरी बंगाल लिया और फिर मगध। १०२३ ई० के आसपास उसने मिथिला को भी ले लिया।

चालुक्य राजा सोमेश्वर प्रथम (१०४० से १०६६ ई० तक) के काल में ही उसके पुत्र विक्रमादित्य ने पूर्वोत्तरीय भारत पर आक्रमण किया। उसी के साथ-साथ अनेक महत्त्वाकांक्षी सैनिक नेता दक्षिण से, विशेषत. कर्णाट से आए। इन्होंने ही पूर्वोत्तर भारत में छोटे-छोटे राज्य स्थापित किए। इसी प्रकार बंगाल के सेन राजकुल की स्थापना हुई होगी। क्योंकि इस कुल के संस्थापक अपने को कर्णाटकुल लक्ष्मी के रक्षक और दाक्षिणात्य भी कहते हैं। विद्वानों का अनुमान है कि ये लोग चालुक्य सम्राट् विक्रमादित्य के आक्रमण मे पहलेपहल जमे। इसी प्रकार के आक्रमण में नान्यदेव के पूर्वज भी रहे होंगे। नान्यदेव कन्नड़ शब्द 'नन्निय' अर्थात् प्रिय का संस्कृतीकरण मालूम होता है। इससे भी इनके दक्षिणदेशीय होने का प्रमाण मिलता है। नान्यदेव ने तिरहुत पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर आसपास के देशों पर आक्रमणों की श्रृंखला-सी बाँध दी। सिलवाँ लेवी का तो सुझाव है कि यह असंभव

नहीं कि पहले वह किसी स्थानीय राजा के अंतर्गत रहा हो और बाद में अपने स्वामी का तख्ता उलट दिया हो।

श्री एच० सी० राय महोदय का कहना है कि विजयसेन (लगभग १०९७ से ११५९ ई० तक) ने नान्यदेव को हरा दिया था। विजयसेन के पुत्र वल्लालसेन के विषय में 'वल्लाल-चरित'–नामक ग्रन्थ बताता है कि उसके पाँच प्रांतो में एक मिथिला भी था। 'लघुभारत" नामक ग्रंथ से भी मालूम होता है कि वल्लालसेन का मिथिला पर आधिपत्य था—अर्थात् मिथिला करद राज्य था। रामदेवी से उत्पन्न वल्लालसेन का पुत्र लक्ष्मणसेन ११८५ ई० में गद्दी पर बैठा। संभवत इसने इलाहाबाद तक अपना प्रभाव जमा लिया था। मिथिला मे लक्ष्मणाब्द का प्रचलन भी बहुत दिनों से है। इससे सिद्ध होता है कि लक्ष्मणसेन के अंत समय तक अर्थात् १२०६ ई० तक सेनों का आधिपत्य मिथिला पर रहा। पर १२३८ ई० के बाद तिरहुत में नान्यदेव के वंशज कर्णाट राजाओं ने दिल्ली और लखनौती के बीच खुले मैदान मे अपनी स्वतंत्रता कायम कर ली।

काठमांडू में १७वीं शदी के एक लेख में नान्यदेव की वंशावली इस प्रकार दी गई है।

१ नान्यदेव

२. गंगदेव

३. नृसिंह

४ राम सिंह
५. शक्ति सिंह
६ भूपाल सिंह
७ हरि सिंह

बंगाल में शमसुद्दीन फिरोज के मरने पर उसके बेटे आपस में लड़ने लगे। उनमें से दो दिल्ली के सुलतान से मदद लेने पहुँचे। १३२४ ई० में गयासुद्दीन ने बंगाल पर चढ़ाई की। वह गंगा के उत्तर-उत्तर तिरहुत के रास्ते बढ़ा। इस कारण तिरहुत के राजा हरि सिंह से उसका युद्ध हुआ। हरि सिंह हारकर नैपाल भाग गए। मिथिला में इस पूरे कर्णाट वंश का राज्यकाल २१६ या २२६ वर्ष का माना जाता है। वहाँ यह अनुश्रुति भी है कि जब हरि सिंह तिरहुत छोड़कर नैपाल चले गए, तो दिल्ली के सुलतान ने हरि सिंह के ब्राह्मण मंत्री कामेश्वर ठक्कुर को तिरहुत का राज्य दे दिया। यही मिथिला के ओइनवार वंश के संस्थापक हुए। कामेश्वर का पुत्र भोगीश्वर फीरोज तुगलक का मित्र था। उसने या उसके पुत्र गणेश्वर ने मिथिला में फिर से स्वतंत्र राज्य स्थापन करने का प्रयत्न किया, यद्यपि इस प्रयत्न में बाधा भी पड़ती गई। वस्तुत बात यह थी कि इस समय यदि हिंदुओं में इतना जीवट न था कि वे अपना साम्राज्य कायम कर सकते, तो वे इतने मुर्दा भी नहीं थे कि दूर के प्रांतों में भी अपनी स्वतंत्रता न बनाए रख सकते। और फिर तुर्क सलतनत में भी फूट

पड़ गई थी। तुर्क सरदार अपने-अपने प्रदेशों में हिंदुओं में घुलमिल गए थे। अवसर पाकर वे स्वाधीन होने लगे और इसके फलस्वरूप दिल्ली को केंद्रीय शक्ति क्षीण होने लगी। इसी परिस्थिति से मिथिला ने भी फायदा उठाया।

संस्कृति और लोकजीवन

वैदिक कर्मकांड के विदेह में प्रसार की एक कहानी शतपथ-ब्राह्मण में है। एक विदेह-निवासी (विदेह माथव=विदेह माधव) वैदिक साहित्य के अध्ययन के लिए कुरु देश में सरस्वती के किनारे गया। अग्निपूजा तथा यज्ञ उसी के साथ पूर्व में फैले और सदानीरा (बड़ी गंडक) को पार कर विदेह में वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा उसने की। मैथिल परंपरा के अनुसार मंडन, वाचस्पति और उदयन आदि विचारक मिथिला के ही थे। नव्यन्याय के प्रणेता गंगेश उपाध्याय भी यहीं के थे। मंडनमिश्र आरंभ में बड़े भारी मीमांसक थे। शंकराचार्य के साथ इनके शास्त्रार्थ की घटना प्रसिद्ध है। शंकराचार्य से हारने के बाद सुरेश्वराचार्य के नाम से ये संन्यासी हो गए, ऐसी प्रसिद्धि है। कहा जाता है, 'ब्रह्मसिद्धि' नामक इनका प्रौढ दार्शनिक ग्रन्थ है। वाचस्पति मिश्र की प्रतिभा सर्वतोगामिनी थी। इन्होंने षड्दर्शनों पर मार्मिक व्याख्याएँ लिखी हैं। इनके ग्रन्थ 'तात्पर्य टीका' (न्याय शास्त्र), 'तत्त्वकौमुदी' (सांख्य), तथा 'भामती' (अद्वैत वेदान्त)

बहुत प्रसिद्ध हैं। इन्होंने अपने अन्यतम ग्रन्थ 'न्याय-सूची-निबंध' का रचना-काल ८६८ विक्रमी दिया है। अतः इनका समय ६वीं शदी का मध्यभाग था। बौद्धों के उग्र विचारों के ये कट्टर बिरोधी थे। धर्मकीर्ति के ब्राह्मणधर्म पर किए गए आक्षेपों का उत्तर वाचस्पति ने "तात्पर्य टीका" नामक ग्रन्थ लिखकर दिया। दार्शनिकों की इसी परंपरा में उदयन भी हुए। इनका समय दशम शतक का उत्तरार्ध है। इनका सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है 'आत्मतत्त्वविवेक' जिसमें बौद्धों के आत्म-विषयक सिद्धान्तों का खंडन है। तर्क के आधार पर ईश्वर को सिद्ध करने के लिये इन्होंने "न्याय-कुसुमांजलि" नामक ग्रन्थ लिखा। 'तात्पर्य-परिशुद्धि' में बौद्धों के आक्षेपों की मीमांसा की गई है। गंगेश उपाध्याय ने तो न्याय की एक नई पद्धति ही चला दी। इनका महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'तत्त्वचिंतामणि' है, जिसमे न्यायशास्त्र का पदार्थशास्त्र से प्रमाणशास्त्र के रूप मे परिवर्तन दिखाया गया है। इन्होंने अनेक पारिभाषिक शब्दों की उद्भावना की है, जिसके द्वारा शास्त्रीय विचारों का प्रौढ़ निरूपण किया जा सकता है। 'तत्त्वचिंतामणि' ग्रन्थ के कारण ही गंगेश उपाध्याय नव्यन्याय के प्रणेता माने जाते है। यह तो दर्शन के क्षेत्र में हुआ। साहित्य के क्षेत्र में जयदेव मिश्र (पक्षधर) ने १४०६—६४ ई० के आसपास 'प्रसन्नराघव' नामक एक नाटक लिखा, जिसमें सर्वप्रथम सीताजी का पुष्पवाटिका में राम से मिलन दिखाया गया है,

इसका प्रभाव तुलसीदासजी के रामचरितमानस पर भी पडा। इससे यह सिद्ध होता है कि बौद्ध और जैन प्रभाव के बावजूद भी मिथिला में ब्राह्मणधर्म की नींव गहरी थी। वर्ना एकाएक मिथिला में सनातन हिंदूधर्म का इतना प्रभाव कैसे हो जाता। मिथिला मे वैदिक परंपरा की छाप से अकित ग्राम भी हैं, जैसे 'यजुआर' (यजुर्वेद का केंद्र), माउबेहट (माध्यन्दिनी शाखा), 'अथरी' (अथर्ववेद का केंद्र), 'ऋगा' (ऋग्वेद का केंद्र, 'कुथुमा' (कौथुमी शाखा), 'भट्ट सिमरी' और 'भट्टपुरा' (मीमासा का भट्ट सम्प्रदाय)।[1] इससे सिद्ध होता है कि मिथिला में ब्राह्मण-परंपरा कभी नष्ट नहीं हुई थी, वह जीवित थी। जबतक जैन और बौद्धधर्म को राज्य का प्रोत्साहन मिलता था, तबतक उनका प्राबल्य दिखाई पड़ा। किंतु जब राज्य की ओर से ब्राह्मणधर्म को भी समर्थन मिलने लगा, तो यह धर्म भी सामने आ गया। इसी अर्थ में मिथिला मे सनातन ब्राह्मणधर्म का पुन प्रवर्तन हुआ।

जिस जनपद की धरती उर्वरा हो, वहाँ के निवासियों में यदि क्रियाशीलता भी हो, तो उस जनपद का विकास होता

---

१ डा० जयकान्त मिश्रजी ने अपने मैथिल साहित्य के इतिहास मे ऐसा उल्लेख किया है। पर डा० सुभद्र झा महोदय ने मुझसे बताया है कि मिथिला में ऋग्वेदी अथवा अथर्ववेदी ब्राह्मण नहीं रहते। और न भाषा-विज्ञान की दृष्टि से उन उन ग्रामों के नाम उन-उन संस्कृत शब्दों मे निकल सकते हैं।

है। किंतु यदि धरती की उर्वरता के साथ ही जनता में क्रिया-शीलता न हो, तो वहाँ के जनपद का विकास रुक जाता है। प्राचीनकाल में मिथिला जनपद के लोगों में क्रियाशीलता थी। इसीलिए उपनिषद् के दार्शनिक विचारक मिथिला में पैदा हुए, महावीर जैसे रूढ़िभंजक मिथिला में पैदा हुए, गणतन्त्रों और स्वाधीन चिन्ताधारा का विकास मिथिला मे हुआ। किन्तु धरती की उर्वरता के लाभ का योग कुछ कुलों तक ही सीमित था, बहुजनसमाज कमकर और दुखी था, अतः इस दार्शनिकता को सामाजिक और आर्थिक आधार न मिल सका। फलतः वह जनजीवन से नष्ट हो गई। आगे चलकर मिथिला में ब्राह्मणधर्म की दार्शनिकता बढ़ी। किन्तु उसका भी सामाजिक और आर्थिक आधार वही था। किन्तु फिर भी धरती की उर्वरता के कारण अधिकाश जनता को तो थोड़ा-बहुत अवकाश था ही। इसीलिए मैथिल जीवन मे 'चलू, गप्प करू' की प्रवृति वढ़ चली। थोड़ा-बहुत गप्प करने की प्रवृति सब जगह है, पर मिथिला में तो नियोजित ढंग से गप्प है। मैथिल जीवन में दो आनंद सर्वोपरि माने जाते हैं "भोजन और गप्प"। गप्प से सब नुकसान ही हो, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। इससे मिथिला को वाक् वैदग्ध्य का लाभ हुआ, पर सब कुछ को देखते हुए यह लाभ बहुत नहीं है।

मिथिला में पांडित्य की प्रतिष्ठा थी। मैथिल संस्कृति से

अनुप्राणित विशेषत: वहाँ के ब्राह्मण तथा कायस्थ ही होते रहे हैं। वहाँ बसनेवाले दूसरी जाति के लोगों में शिक्षा की प्रायः न्यूनता ही रही है। ब्राह्मणों की इस प्रमुखता के कारण वहाँ साधारणतया संस्कृत का ही प्रचार रहा तथा विद्यापति प्रभृति अनेक कवियों की जन्मभूमि रहने पर भी वहाँ मैथिली भाषा का विकास अवरुद्ध-सा होता रहा। यदि मैथिल ब्राह्मण अपनी मातृभाषा की ओर ध्यान देते तो प्राय. संपूर्ण पूर्वोत्तर की भाषा मैथिली हो गई रहती। पर ऐसा लगता है कि प्रादेशिकता के स्थान पर यहाँ के पडित देश की सास्कृतिक एकता पर ध्यान अधिक देते थे। मिथिला मे शक्ति और शिव की प्रधानता है। मैथिल लोकगीतो पर तो सर्वत्र शक्ति और शिव की छाप है और शक्ति के उपासक मिथिला मे सर्वाधिक हैं। मिथिला में पहले भी तान्त्रिक लोग थे और अब भी तंत्रो पर विश्वास करनेवाले लोग वहाँ हैं। मैथिल ब्राह्मणों के घरों का गृहपति नित्य पार्थिव लिंग का पूजन करता है, बिना शक्ति की पूजा किए पानी नहीं पीता। तारा आदि तांत्रिक देवी-देवताओ पर वहाँ के लोगों के अधिकाश नाम होते हैं। लाल रंग की धोती पहने प्रायः ही मैथिलो को देखा जा सकता है। ललाट, बाहु तथा अन्य अंगों मे भी भस्म लगाना उनका नित्य का कर्म है।

अतिथि-सत्कार मिथिला की एक विशेषता है। वहाँ भोजन मे विविध व्यंजनो को कलात्मक ढंग से परसा जाता है।

थाली में भात कहीं स्वस्तिक के रूप में और कहीं (ऊं) ओंकार के रूप में प्राय: ही मिलेगा। तरकारी और अचार इतने प्रकार का परसा जायगा कि थाली के चारों ओर कम से कम छ: इंच का घेरा भर जायगा। दही के बगैर भोजन अपूर्ण माना जाता है। ससुराल का आनंद तो मिथिला में ही मिलता है। दामाद जल्दी जाने नहीं पाता। रोज-रोज नये-नये किस्म का खाना मिलता है। लडकियाँ शिष्ट और सुंदर मजाक करती हैं। वह बराबर 'पहुना' को बेवकूफ बनाने की कोशिश करती हैं। चाहे कितना भी बूढा दामाद हो बिदाई के समय उसे पीली धोती अवश्य पहननी पड़ेगी।

मैथिल भोजन में खटाई का योग अवश्य होगा। खटाई को आमिल कहते हैं। आमिल बगैर रहर की दाल नहीं बन सकती। आमिल के संबध में एक कहानी है। गोनू झा की पत्नी ने उनसे कहा कि दाल तो चोर ले गया। गोनू झा ने पूछा 'खटाई ले गया या नहीं।' पत्नी ने कहा, 'नहीं, खटाई तो है ही'। इस पर गोनू झा ने कहा तब तो चोर दाल वापस कर जायगा। बिना खटाई के दाल क्या करेगा। दही-चूडा मिथिला की विशेषता है। वहाँ के लोग डट कर दही-चूड़ा खाते हैं। 'वर्ण रत्नाकर' में दही-चूडा के जलपान का बड़ा सरस वर्णन है। उसमें 'क्षीरोदक' और 'लोहरी' प्रभृति हेमन्त में होनेवाले धान के सुगन्धित चूडा का उल्लेख और

ग्यारह अगुल मोटी मलाई से पूर्ण शरद की पूर्णिमा के समान सुदर, सुगन्धित तथा अमृत के समान मधुर दही का वर्णन है। वस्तुत. दही का आनद मिथिला में ही मिलता है। मैंने पाच सेर तक दही खाने और पचानेवाले मिथिलावासियों को देखा है।

कर्णाट वश के अतिम राजा हरिसिह बड़े लोकप्रिय थे। उन्होने ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों की 'पजी' की प्रथा चलाई। यह 'पजी' ताड़ के पत्तों पर लिखी जाती है। इसमे मिथिला के राजवश तथा द्विजवंश का वृतान्त रहता है। पंजी-लेखक प्रतिवर्ष गॉव-गॉव मे घूमकर नवजात बालक-बालिकाओं का नाम-पता और जन्मतिथि आदि लिख लेता है। इसी पंजी से सबधित कौलीन्याभिमान है। मिथिला मे ब्रह्मणों की चार श्रेणियॉ हैं श्रोत्रिय, योग्य, पंजीबद्ध, जयवार। इनमें पारस्परिक कौलीन्याभिमान बहुत होता है। मिथिला के श्रोत्रिय ब्राह्मणों का कुलाभिमान गजब का होता है। मैथिल ब्राह्मणों के लिए एक सौराठ की सभा दरभंगा जिले के मधुबनी इलाके मे होती है। इसमें श्रोत्रिय ब्राह्मण नहीं शरीक होते। इस सभा में ब्राह्मणों की लडकियो के सिर्फ अभिभावक और ब्राह्मणो के लडकों के साथ लड़कों के अभिभावक ही शरीक होते हैं। इस सभा मे मुख्य स्थान पंजीकार का होता है। वह कुल और गोत्र की शुद्धाशुद्धी का रजिस्टर रखता है। रजिस्टर में वंश परपरा दर्ज रहती है। यही देखकर पजीकार के निर्णय पर

विवाह निश्चित होता है। विवाह निश्चित हो जाने के बाद लड़की वाला लड़के को अपने घर ले जाता है और तिथि देखकर शादी करता है। शादी के एक या सवा महीने बाद तक लड़का ससुराल में रहता है। पर मैथिल ब्राह्मणों की यह प्रथा उन्हीं तक सीमित है। उनके अंदर तिलक-दहेज की प्रथा भी पहले नहीं थी। कौलिन्य के कारण ही कुछ समय पहले तक इन कुलीनों में बहु विवाह की प्रथा प्रचलित थी, जिससे अनेक समस्याओं की सृष्टि हो गई थी। पर अब वैसी बात नहीं है। अब विवाह के बाद लड़का भी ज्यादे दिन तक ससुराल में नहीं रहता है। सात-आठ दिन ही पर्याप्त गिने जाते हैं।

मैथिल लोकगीतों से मैथिली लोकजीवन का एक चित्र देना अनुचित न होगा :

कोकटिक धोती पटुआक साग।
तिरहुत गीत बड़ए अनुराग॥
सुंदर अमओट फोका मखान।
खिरसा केर लड्डुवी पकवान॥
जड़ी इसरगत कर में बान्ह।
अपना अपनी कुल अभिमान॥
देवी उपासना सभकेओ जान।
पावनि सराही चौठी चान॥

कदली थम्हक भोजक पात ।
क्रिया कर्म में उज्वल हात ॥
दहीक सौखी सकलो देस ।
धर्म कर्म रत रहए नरेश ॥
गप्पक रसिया करए न कार ।
सम दुखक औषध फलाहार ॥
भाव भरल तन तरुणी रूप ।
एवबै तिरहुत होइछ अनूप ॥

——:०:——

मैथिली भाषा

मैथिली मागधी परिवार की भाषा है। इसका कुछ अति प्राचीन रूप अशोक के शिलालेखो मे मिलता है। वस्तुतः मध्यदेश की बोली अशोक के शिलालेखों में नहीं मिलती, इससे स्पष्ट है कि अशोक के दरबार की भाषा पूर्वी प्राकृत ही राजभाषा थी और उसका प्रभाव अन्य सभी बोलियों पर पड़ा था। साहित्य के अंदर इसका प्राचीन रूप "बौद्ध गान ओ दोहा" मे मिलता है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से आगे चलकर इसी की चार शाखाएं हो गईं।

१ पूर्व दक्षिणीय शाखा—जिसमे केवल उड़िया आती है।
२ उत्तर पूर्वीय शाखा—जिसमें केवल आसामी आती है।
३ मध्य शाखा—जिसमें मैथिली, मगही और बंगाली आती है।
४ पश्चिमी शाखा—जिसमें केवल भोजपुरी आती है।

वस्तुतः "बौद्ध गान ओ दोहा" की भाषा ऐसी है, जिसमें मगही, मैथिली, भोजपुरी और बंगला सभी भाषाओं के पूर्व

रूप हैं। ग्रियर्सन के अनुसार मैथिली बिहारी के अंतर्गत है। बिहारी से ग्रियर्सन का तात्पर्य उस एक भाषा से है, जिसकी मगही, मैथिली और भोजपुरी तीन बोलियाँ हैं। भाषा विज्ञान की दृष्टि से ग्रियर्सन का कथन सत्य है। किन्तु बिहार की तीनों बोलियों मे पारस्परिक अन्तर भी कम नहीं है। मैथिली "अछ" या "छू" धातु का प्रयोग भोजपुरी तथा मगही मे नहीं होता। अवधी में यह "अछ" धातु केवल "अछत" कृदन्तीय रूप में ही मिलता है। इस "अछ" धातु का प्रयोग बंगला, पहाडी, राजस्थानी तथा गुजराती आदि भाषाओं में मिलता है। यद्यपि वैज्ञानिक दृष्टि से मैथिली की उत्पत्ति मागधी अपभ्रंश से हुई है और इस प्रकार वह मगही तथा भोजपुरी की सगी और बंगला, उड़िया तथा असामिया की चचेरी बहन है, तथापि मैथिली का क्रियापद जितना जटिल है, उतना किसी मागधी अपभ्रंश से प्रसूत भाषा का नहीं है। उदाहरण-स्वरूप 'देख' क्रिया के रूप को ले सकते हैं। यदि किसी को यह कहना है कि मैंने श्रीमान राजा को देखा जब कर्म अन्य पुरुष मे हो तथा उसके प्रति विशेष आदर प्रदर्शित करना हो तो कहेंगे 'हम राजा के देखलिअन्हि'। किन्तु जब कर्म मध्यम पुरुष मे हो, तब 'हम अपने के देखल' अर्थात मैंने आप श्रीमान को देखा। इसी प्रकार मध्यम पुरुष मे जब कर्म अन्य पुरुष का होता है तथा जब वह किसी निम्न श्रेणी के व्यक्ति का बोधक होता है, तब

'देखलह्' रूप होता है यथा 'तों मलिया के देखलह्'। किन्तु जब अन्य पुरुष के कर्म के प्रति आदर प्रदर्शित करना होता है, तब 'देखलहुन' रूप होता है, यथा 'तों राजा के देखलहुन' अर्थात् तुमने राजा को देखा। इस प्रकार बिहारी भाषा में भी मैथिली कुछ भिन्न है। बंगला से भी उसमें भिन्नता है। बंगला की तरह गोलाकार रूप में मैथिली नहीं बोली जाती। मैथिली में सानुनासिक और अर्धचन्द्र का तथा विशेषकर 'व' का प्रयोग अत्यन्त प्रचलित है। इसके सर्वनाम इत्यादि विशेषकर पालि तथा प्राकृत से मिलते जुलते हैं। इन कारणों से मैथिली एक स्वतंत्र भाषा है।

मैथिली दरभंगा, मुजफ्फरपुर, मुंगेर, भागलपुर और पूर्णियाँ जिले में बोली जाती है। मैथिली की निम्नलिखित सात विभाषाएँ अथवा बोलियाँ हैं:—

(१) आदर्श (स्टैंडर्ड), (२) दक्षिणी, (३) पूर्वी, (४) छिका छिकी, (५) पश्चिमी, (६) जोलही और (७) केंद्रीय जन साधारण की मैथिली। भौगोलिक दृष्टि से इन विभाषाओं के निम्नलिखित क्षेत्र हैं:—

१. आदर्श मैथिली—उत्तरी दरभंगा

२. दक्षिणी मैथिली—(क) दक्षिणी दरभंगा

(ख) पूर्वी मुजफ्फरपुर

(ग) उत्तरी मुंगेर

(घ) उत्तरी भागलपुर

(ङ) पश्चिमी पूर्णियाँ

३ पूर्वी मैथिली—(क) पूर्वी पूर्णियाँ

(ख) माल्दा तथा दिनाजपुर (इसे खोट्टा बोली भी कहते हैं।)

४. छिकाछिकी—(क) दक्षिणी भागलपुर

(ख) उत्तरी संथाल परगना

(ग) दक्षिणी मुँगेर

५. पश्चिमी मैथिली-(क) पश्चिमी मुजफ्फरपुर

(ख) पूर्वी चम्पारन

६ जोलहा या जोलही मैथिली-उत्तरी दरभंगा के मुसलमानों की बोली

७ केंद्रीय जनसाधारण की मैथिली—

(क) पूर्वी सीतामढ़ी की बोली

(ख) मधुबनी सबडिविजन की निम्न श्रेणी की जातियों की बोली।

मैथिली की विशेषताएं

इस भाषा का सीधा संबंध 'मागधी' प्राकृत से होने के कारण इस भाषा मे मागधी प्राकृत की विशेषताऍं प्राप्त होती हैं, जैसे —

१. श, ष, स को 'श' में बदल जाना।

२ शब्द के मध्य अथवा अंत में स्थित 'इ' अथवा 'उ' का पहले ही उच्चारण हो जाता है जिसे 'अपिनिहित' कहते हैं। जैसे—पानि (लिखित) किन्तु बोलने के समय उसका रूप 'पाइन' तथा 'कवि' का 'कइव', 'फागु' का 'फाउग'।

३ भूतकाल में 'ल' का प्रयोग होता है, जैसे-देखल, सुनल

४. भविष्यत्काल मे 'व' का प्रयोग होता है, जैसे—देखव, करव।

५. भूतकाल के अन्य पुरुप के साथ क्रियाओं मे 'क' प्रत्यय का प्रयोग होता है, जैसे—देखलक, सुनलक, कपलक।

६. 'अछ' तथा 'थाक' धातुओं का प्रयोग।

उपर्युक्त लक्षण तो प्रायः सभी मागधी भापाओं मे घटते हैं किन्तु मैथिली की कुछ निजी विशेपताएँ भी हैं, जैसे.—

१ सर्वनामों का बाहुल्य तथा प्रत्येक सर्वनाम के लिये पृथक् क्रियापदों का प्रयोग। यह बात अन्य भापाओं के साथ नहीं है। क्रिया की बहुरूपता इस भापा को अन्य भापाभापियों के लिये कठिन बना देती है।

२. सर्वनामों मे आदरार्थक सर्वनामों की संख्या बहुत है तथा उनके कर्म के अनुसार भिन्न-भिन्न क्रियापदों का प्रयोग होता है।

३. 'अत' प्रत्यय का प्रयोग भविष्यत्काल मे अन्यपुरुप में होता है, जैसे देखत, करत, जाएत।

(घ) उत्तरी भागलपुर

(ङ) पश्चिमी पूर्णियाँ

३. पूर्वी मैथिली—(क) पूर्वी पूर्णियाँ

(ख) माल्दा तथा दिनाजपुर (इसे खोट्टा बोली भी कहते है।)

४. छिकाछिकी—(क) दक्षिणी भागलपुर

(ख) उत्तरी संथाल परगना

(ग) दक्षिणी मुँगेर

५. पश्चिमी मैथिली–(क) पश्चिमी मुजफ्फरपुर

(ख) पूर्वी चम्पारन

६. जोलहा या जोलही मैथिली–उत्तरी दरभंगा के मुसलमानों की बोली

७ केंद्रीय जनसाधारण की मैथिली—

(क) पूर्वी सीतामढ़ी की बोली

(ख) मधुबनी सबडिविजन की निम्न श्रेणी की जातियों की बोली।

मैथिली की विशेषताएं

इस भाषा का सीधा संबंध 'मागधी' प्राकृत से होने के कारण इस भाषा मे मागधी प्राकृत की विशेषताएँ प्राप्त होती हैं, जैसे —

१. श, ष, स को 'श' में बदल जाना।

२ शब्द के मध्य अथवा अंत मे स्थित 'इ' अथवा 'उ' का पहले ही उच्चारण हो जाता है जिसे 'अपिनिहित' कहते हैं। जैसे—पानि (लिखित) किन्तु बोलने के समय उसका रूप 'पाइन' तथा 'कवि' का 'कइव', 'फागु' का 'फाउग'।

३ भूतकाल में 'ल' का प्रयोग होता है, जैसे-देखल, सुनल

४. भविष्यत्‌काल में 'व' का प्रयोग होता है, जैसे—देखव, करव।

५. भूतकाल के अन्य पुरुष के साथ क्रियाओं मे 'क' प्रत्यय का प्रयोग होता है, जैसे—देखलक, सुनलक, कपलक।

६. 'अछ' तथा 'थाक' धातुओ का प्रयोग।

उपर्युक्त लक्षण तो प्राय. सभी मागधी भाषाओं में घटते हैं किन्तु मैथिली की कुछ निजी विशेषताएँ भी हैं, जैसे —

१ सर्वनामों का बाहुल्य तथा प्रत्येक सर्वनाम के लिये पृथक् क्रियापदों का प्रयोग। यह बात अन्य भाषाओं के साथ नहीं है। क्रिया की बहुरूपता इस भाषा को अन्य भाषाभाषियों के लिये कठिन बना देती है।

२. सर्वनामों मे आदरार्थक सर्वनामो की संख्या बहुत है तथा उनके कर्म के अनुसार भिन्न-भिन्न क्रियापदो का प्रयोग होता है।

३. 'अत' प्रत्यय का प्रयोग भविष्यत्‌काल मे अन्यपुरुष में होता है, जैसे देखत, करत, जाएत।

४. 'थ' प्रत्यय का प्रयोग क्रियाओ में आदरार्थक सर्वनाम के साथ जिससे उनको वचन का भी स्पष्टीकरण हो जाता है।

५. आदरार्थक सर्वनाम मध्यमपुरुष मे 'अहाँ' का प्रयोग होता है।

६. क्रिया में 'हो' धातु के अतिरिक्त 'अछ' तथा 'थिक' का भी प्रयोग होता है।

इसके अतिरिक्त 'ल' के स्थान पर 'र' तथा 'श' के स्थान पर 'स' का भी प्रयोग होता है।

मूर्धन्य 'प' का उच्चारण इस भाषा में 'ख' के जैसा होता है किन्तु वही 'प' अगर संयुक्त होकर आता है तो प्रकरण भेद से कभी विसर्ग तथा कभी तालव्य 'श' जैसा उच्चरित होता है। जैसे पष्ठी का उच्चरित रूप 'खष्ठी' तथा पुष्कर का उच्चरित रूप 'पु.कर'।

इसके अतिरिक्त इस भाषा मे नाम धातुओं का भी बाहुल्य है जिससे इस भाषा मे क्रियाओं की सख्या बहुत हो जाती हैं। यहाँ के धातु रूप भी अन्य भाषा से कुछ भिन्न हैं।

मैथिली लिपि

मैथिली की अपनी खास लिपि है जिसे 'मिथिलाक्षर' अथवा 'तिर्हुता' कहा जाता है। बौद्धों के प्राचीन ग्रंथ 'ललित-विस्तर' मे इसका नाम 'वैदेही' मिलता है।

'लिपि' शास्त्र के विद्वानों के अनुसार 'मैथिली लिपि' का विकास 'गुप्त लिपि' से माना जाता है। 'नागरी लिपि' का उत्तर पूर्वी भारत मे प्रचार होने से बहुत पहले ही इस 'लिपि' का विकास हो चुका था और इसी कारण से 'देवनागरी का प्रभाव इस 'लिपि' पर नहीं दीख पड़ता। इस लिपि में लिखित पुस्तकों का पता जापान तथा चीन देश मे भी मिलता है।

८वीं शदी तक बनारस पूर्वी लिपि के लिए सीमा का काम कर रहा था कि ११वीं शदी होते होते यह सीमा पूर्व की ओर बढ़ने लगी। १२वीं शदी तक मगध मे पूर्वी तथा पश्चिमी दोनों लिपियाँ चल रही थीं। यवनों के मगध पर अधिकार के साथ-साथ 'देवनागरी' का भी प्रचार मगध मे हो गया। अब से पूर्वी लिपि का प्रचार मिथिला तथा उसके पूर्ववर्ती प्रांतो तक ही सीमित रहा। मगध में पूर्वी लिपि का प्रभाव चौदहवीं शताब्दी तक दीख पडता है, किन्तु पंद्रहवीं शताब्दी तक नागरी लिपि का एकाधिपत्य मगध पर हो गया था।

तात्पर्य यह कि बंगला, आसामी, उड़िया तथा मैथिली इन चारों लिपियों का विकास एक ही मूलस्थान से हुआ है और इसी से आज से ५ सौ वर्ष पहले की लिखी हुई कोई चीज अगर हम देखें तो स्पष्ट हो जाएगा कि इन लिपियों में कोई भी भेद न था। बंगाल, आसाम तथा मिथिला का सम्पर्क बहुत दिनो तक बना रहा और इसी से इन लिपियों

में भेद आरंभ में नहीं दिख पड़ते किन्तु सत्रहवीं शताब्दी आते-आते बंगाल में छपाने की व्यवस्था प्रारंभ होने से के रहनेवालों ने लिपि में कुछ सुधार किए और तब से लिपियों का पृथक्कीकरण हुआ।

मिथिला में तिहुता मे छपाई की व्यवस्था न होने से पर वही 'लिपि' चलती रही तथा उसमें कुछ परिवर्तन दीखते। हाँ, ऐसी बात जरूर है कि कुछ 'लिपिकों' ने अ सुविधानुसार कुछ परिवर्तन अवश्य कर लिए।

इस लिपि मे 'संयुक्ताक्षरों' के लिये एक खास अक्षर हुए हैं। भारत के अन्य लिपियों मे ऐसी बात नहीं यद्यपि देवनागरी आदि में 'क्ष', 'त्र', 'ज्ञ' के लिये खास अ का प्रयोग होता है किन्तु यहाँ तो—र्ग, क्र, ष्ण, क्र, त्य जितने भी संयुक्ताक्षर होंगे सबों के लिये एक विशेष अक्षर प्रयोग होता है, जिससे इस लिपि को अन्य भाषा भाषियं सीखने मे वडी कठिनाई होती है।

इस लिपि मे छपाई की व्यवस्था न होने से ग्रंथ अ देवनागरी में ही छपते है, किन्तु प्राचीन जितनी भी पाडुलि मिलती हैं सभी इसी 'मिथिलाक्षर' में। अभी भी जि शुभ कार्य आदि के अवसर पर चिट्ठी-पत्री चलती है सभी लिपि में। नये लोग व्यवहार में देवनागरी का प्रयोग करते किन्तु वृद्ध लोग अभी उसी लिपि में अपना कार्य करते हैं।

— — ० — —

मैथिली साहित्य का प्राचीन युग

मैथिली साहित्य का प्राचीन युग

बिहार की भाषाओं तथा बोलियों में वस्तुत. मैथिली ही ऐसी है जिसमें विपुल साहित्य मौजूद है। संस्कृत का केंद्र काशी, भोजपुरी क्षेत्र के अंतर्गत है जिसके फलस्वरूप भोजपुरी ब्राह्मणों ने अपने को संस्कृत के अध्ययन तक ही सीमित रक्खा और साहित्यिक क्षेत्र में भोजपुरी की उन्होंने अवहेलना की, किंतु इसके विपरीत मिथिला मे अनेक मैथिल ब्राह्मणों ने संस्कृत और मैथिली दोनो को अपने आत्मप्रकाशन का माध्यम बनाया। मिथिला में सस्कृत का मान कम नहीं था। फिर भी मिथिला के कुछ ब्राह्मणों ने मैथिली में रचना की। यही कारण है कि मैथिली में लिखित रूप मे अत्यन्त प्राचीन साहित्य मौजूद है। श्रीमान् कुमार गगानद सिंह तथा डा० जयकान्त मिश्र ने मैथिली साहित्य के अनुसंधान मे विशेष कार्य किया है। प्रस्तुत ग्रंथ मे इन विद्वानों द्वारा उपस्थित की हुई सामग्री का बहुत कुछ उपयोग किया गया है। किंतु अनेक स्थानों पर मतभेद भी प्रकट कर दिया गया है।

अध्ययन की दृष्टि से विद्वानों ने मैथिली साहित्य को तीन भागों में विभाजित किया है :

१ प्राचीन मैथिली साहित्य (१३०० ई० से १६०० ई० तक) आरंभ में तो कुछ मैथिली के गीत तथा पद मिलते हैं, किंतु १४०० ई० के पश्चात् 'मैथिल कोकिल विद्यापति' के आविर्भाव से मैथिली साहित्य जगमगा उठता है। जयदेव के पश्चात् वस्तुत: विद्यापति ही पूर्वी भारत के सबसे बड़े कवि हैं। इन दोनों में विशेष अंतर यह है कि जहाँ जयदेव ने संस्कृत की शरण ली थी, वहाँ विद्यापति ने संस्कृत के साथ-साथ जनवाणी मैथिली को भी अपनाया।

२. मैथिली साहित्य का मध्य युग (१६०० ई० से १८६० ई० तक) नाटकों के लिये प्रसिद्ध है। इस युग के नाटककारों तथा लेखकों में वंशमणि झा, जगत् प्रकाश मल्ल, तथा उमापति उपाध्याय आदि का उल्लेख किया जा सकता है। वंगीय साहित्य परिषद् से प्रकाशित 'नेपाले बाँगला नाटक' एवं आसाम प्रांत में रचित 'अंकिया नाट' में भी मैथिली के रूप उपलब्ध हैं।

३ मैथिली साहित्य का आधुनिक युग १८६० ई० से माना जाता है। यद्यपि यह नया युग १८६० ई० से प्रारंभ होता है, किंतु वस्तुत: १८८० ई० के पश्चात् दरभंगा नरेश महाराजा लक्ष्मीश्वर सिंह के राज्यारोहण के समय से मैथिली

साहित्य को विशेष प्रगति मिलनी आरंभ होती है। उधर अंग्रेजी का भी प्रभाव मैथिली भाषा और साहित्य पर पड़ने लगा और यह प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर भी होता है।

मैथिली भाषा तथा साहित्य के आदि युग का नमूना हमें 'बौद्ध गान और दोहा' नामक सिद्धों के पदों में मिलता है। ये सिद्ध नालन्दा तथा विक्रमशिला के थे। इनके द्वारा लिखित 'चरियाचरिय विनिश्चय' के दोहे तो प्रायः अपभ्रंश के हैं। किंतु चरिया गीत तथा डाकार्णव की भाषा अंशतः जनभाषा है। म० म० प० हरप्रसाद शास्त्री, डाक्टर सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, डाक्टर प्रबोध बाग्ची, डाक्टर शहीदुल्लाह तथा डाक्टर सुकुमार सेन ने इन सिद्धों की भाषा के विषय में जो कार्य किया है उसके अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इनमें प्राचीन बंगला, मैथिली, मगही, भोजपुरी, असमियाँ आदि बोलियों के रूप मिलते हैं। सच बात तो यह है कि जितना ही हम प्राचीन युग की भाषा की ओर जाते हैं उतना ही मगधी अपभ्रंश से उत्पन्न ऊपर की बोलियों में समानता का अनुभव करते हैं। डाक्टर सुभद्र झा जी ने अपनी थिसिस 'फारमेसन आव मैथिली लैंगवेज' में तथा डा० उमेश मिश्र ने अपने निबंध में उस भाषा को मैथिली का पूर्व रूप माना है। सच तो यह है कि ये सिद्ध गोरखपुर से लेकर भागलपुर तक बिखरे हुए थे। तथा उन लोगों ने अपने भावों

निम्नलिखित उदाहरण दिये जाते हैं :

'अथ वसन्तवर्णना। वृक्षक नूतनता। पल्लवक उद्गम, कुमुदक सम्भार, मलयानिलक वेग, कोकिलाक कलरव, भ्रमरक झंकार, कंदर्पक प्रभाव, विरहिनीक उत्कंठा, नायकक हरष, नायिकाक अभिलाप, दिनकरक रम्यता, शिशिरक अपगम, मधुकरक समृद्धि, पुष्पक सौरभ, पवनक आकांक्षा, एवम्विध गुण विशिष्ट वसन्त देपु।"

दूसरा उदाहरण इस प्रकार है :

"अथ समुद्र वर्णना। वेला, कल्लोल, तरगनहरी, आवर्त, झात्कार, तें समन्वित, मगल, गौह, गाह, नक्र, कुम्भीर तिमि, तिमिंगिल, सुंसु, शांख, सीप, जलहस्ती, जलनाग जलमानुषादि अनेक जलजंतु तें भयावह। मुक्ता, प्रबाल, वावट, मेस, अहिकांत, शशिकात, सूर्यकान्त, समार, गनुर्वक, वैदुर्य, स्फटिक, टीकपत्त्रादि अनेक रत्न तकर आकरस्थान, डींगा, वोणा, वोहित, जोंगतकर ये सचार तेंरम्प, आपातल, गम्भीर, अपर्यन्त विस्तर, सुरम्य, त्रिपुल, पवित्रतरि, मर्यादाक स्थिति सर्वगुण सपूर्ण समुद्र देपु।"

'वर्ण रत्नाकर' का महत्त्व उसके विषयों को लेकर हैं। तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति का साधारण ज्ञान तो इससे होता ही है साथ ही राजदरबार आदि का भी परिचय हमें प्राप्त होता है।

इस ग्रंथ से कवियों को बडी सहायता मिलती रही होगी। ज्योतिरीश्वर के परवर्ती कवियों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन लोगों ने इससे यथेष्ठ प्रेरणा ग्रहण की। विद्यापति ने भी इससे काफी फायदा उठाया। भाषाशास्त्रियों को भी इस ग्रंथ से अनेक महत्त्वपूर्ण सामग्री प्राप्त होती है।

विद्यापति ठाकुर (१३६० से १४५० तक)

जीवन चरित्र—मैथिल कोकिल विद्यापति का जन्म बेनीपट्टी थाने के 'विसपी' ग्राम में हुआ था। यह स्थान दरभंगा से उत्तर कमतौल स्टेशन के पास है। डाक्टर उमेश मिश्र ने अपनी पुस्तक में कवि की वंश परंपरा इस प्रकार दी है :

विद्यापति के नाम का एक मठ मनीगाछी (दरभंगा) से चार मील पूर्व की ओर स्थित है। इस वंश के सभी लोग प्रकांड पंडित थे तथा राज दरबार में भी उनकी काफी प्रतिष्ठा थी। इनके पूर्वज, कर्मादित्य त्रिपाठी राजा नान्यदेव के मन्त्री थे। इनका उल्लेख मिथिला के एक शिवमंठ की कीर्तिशिला पर है। उसमें लक्ष्मणसेन संवत् २१२ (वि० संवत् १३८८) दिया हुआ है।

विद्यापति के पिता श्री गणपति ठाकुर ने 'गंगा तरंगिणि' नामक ग्रंथ की रचना की है। इस प्रकार इस वंश पर हमेशा से सरस्वती की कृपा रही है।

कीर्ति सिंह की प्रशंसा में ही विद्यापति ने 'कीर्तिलता' की रचना की। सवत् १४२८ में मलिक असलान नामक किसी तुर्क ने षड्यंत्र करके कीर्ति सिंह के पिता श्री गणेश्वर को मार डाला और मिथला पर कब्जा कर लिया। किंतु कीर्तिसिंह ने हिम्मत न हारी। डा० के० पी० जायसवाल के अनुसार जौनपुर के बादशाह इब्राहीम शाह की सहायता से इन्होंने उसे मार भगाया और पुन मिथिला के शासक हुए। किंतु डा० सुभद्र झा इब्राहिम शाह को जौनपुर का शासक नहीं मानते, वे इस इब्राहिम शाह का संबंध दिल्ली से मानते हैं। तथा कीर्तिलता में वर्णनित 'जब्बोनापुर' का सम्बन्ध 'पुरुषपरीक्षा' आदि ग्रन्थों के आधार पर दिल्ली के प्राचीन नाम 'योगिनीपुर'

से स्थापित करते हैं। पर अभी तक डा० जायसवाल का मत ही मान्य है।

कीर्तिसिंह तथा उनके भाइयों की कोई संतान नहीं थी, इसलिये राज्य उनके चचेरे भाई देवीसिंह को हाथ लगा। इन्होंने दरभगा के निकट देवकुल नामक स्थान को अपनी राजधानी बनाया। उनके पश्चात् इनके ज्येष्ठ पुत्र शिव सिंह को अधिकार मिला। इन्होंने गजरथपुर (शिव सिंह पुर) में अपनी राजधानी बनाई। इनका उपनाम रूपनारायण था। इनका जन्म संवत् १४१६ में हुआ था। कहा जाता है कि इनके अधिकार में मिथिला को आते ही मुसलमानों ने आक्रमण करना शुरू किया। किंतु उन्होंने वीरतापूर्वक आक्रमणकारियों को पराजित किया। शिव सिंह ने कई राजाओं को आगे बढ़कर भी पराजित किया तथा विद्यापति को 'विसपी' नामक ग्राम भेंट में दिया था। संवत् १४७० में मुसलमानों ने पुनः मिथिला पर आक्रमण किया। इस युद्ध में शिव सिंह की हार हुई। कुछ लोग कहते हैं कि 'इस युद्ध में वे मारे गये' और कुछ कहते हैं 'नेपाल की ओर भाग गये'। कविवर विद्यापति राज परिवार सहित शिव सिंह के मित्र द्रोणवार वंशीय 'पुरादित्य' के यहाँ जनकपुर के समीप बनौली राज्य में रहने लगे। उन्हीं की आज्ञा से विद्यापति ने 'लिखनावली' नामक ग्रंथ की रचना की थी।

शिव सिंह के पश्चात् उनके छोटे भाई पद्म सिंह ने

राज्य किया। ये बड़े मानी तथा पराक्रमी राजा थे। इनकी मृत्यु के पश्चात् बड़ी चतुराई के साथ इनकी रानी ने राज्य संभाला। विद्यापति ने 'शैवसर्वस्वसार', 'शैवसर्वस्वसार प्रमाण भूत पुराण संग्रह', तथा 'गंगा वाक्यावली' आदि की रचनाएँ इन्हीं की आज्ञा से की थी। इनके पश्चात् उसी वंश में हरि सिंह राजा हुए। इन्होंने अत्यल्प समय तक राज्य किया। इनके अनन्तर नर सिंह देव उपनाम दर्पनारायण गद्दी पर बैठे। इनकी आज्ञा से विद्यापति ने 'विभागसार नामक दायभाग विषयक ग्रन्थ की रचना की थी। इनके पुत्र धीर सिंह, इनके मरने के पश्चात् राजा हुए। इनका समय १४९७ वि० है। उसी समय विद्यापति ने प्राकृत 'सेतुबन्ध काव्य' पर 'सेतु दर्पणी' नामक टीका लिखी जिसमें राजा धीर सिंह का उल्लेख है। इनके अनन्तर धीर सिंह के भाई भैरव सिंह (हरनारायण) गद्दी पर बैठे। इनके समय में विद्यापति ने अनेक संस्कृत ग्रन्थों की रचना की।

इस प्रकार अनेक राजाओं से सबंधित होने के कारण विद्यापति का समय स० १४१७ वि० से १५०७ वि० तक पहुँचता है। विद्यापति के जन्मकाल को लेकर विद्वानों में बहुत मतभेद है। श्री नगेंद्रनाथ गुप्त विद्यापति का जन्म १३५८ ई०, म० म० पं० हरप्रसाद शास्त्री १३५७ ई०, श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी १३५० ई०, डा० बाबूराम सकसेना १३५७ ई० से १३५९ ई०, तथा डा० रमेश मिश्र, डा० जयकान्त मिश्र,

डा० सुभद्र झा और शिवनन्दन ठाकुर तथा रमानाथ झा १३६० ई० मानते हैं।

विद्यापति का युग वस्तुतः मैथिली साहित्य का स्वर्ण युग है। इनकी कविता मिथिला में ही नहीं, अपितु संपूर्ण आर्य भाषा भाषी क्षेत्र में सर्वप्रिय रही। यही कारण है कि उसका बंगला तथा हिन्दी क्षेत्र में काफी प्रभाव है और बहुत दिनों तक बंगलावालों ने उन्हें बंग प्रदेशवासी माना। किन्तु यह तो निश्चय ही था कि विद्यापति मैथिल थे और उनकी मातृभाषा भी मैथिली थी। संस्कृत के अतिरिक्त उन्होंने अपनी मातृ-भाषा को ही काव्य रचना के लिये अपनाया। बंगाल के साहित्यिकों ने विद्यापति का गंभीर अध्ययन किया है। इस कारण उनके संबंध में बंगाल में जितनी सामग्री उपलब्ध है उतनी मिथिला में नहीं।

एक दूसरी दृष्टि से भी विद्यापति आधुनिक आर्यभाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं और वह यह है कि भाषा में गीतिकाव्य के प्रवर्तक वे ही थे। यद्यपि इनसे पहले सिद्धों ने गीतों की रचना की थी। उन गीतों में भी ताल, लय एवं राग का ध्यान रखा गया है किन्तु जहाँ तक शृंगारिक गीतों का संबंध है, यह परंपरा विद्यापति से ही भाषा में आई जान पड़ती है। बाद में इसी पद्धति पर सूरदासजी ने 'सूरसागर' के गीतों की रचना की थी। विद्यापति के गीत केवल मिथिला में ही नहीं बल्कि बिहार के मगही और भोजपुरी क्षेत्रों में भी प्रचलित हो

पदावली की भाषा

विद्यापति की पदावली की भाषा उनके काल की मैथिली भाषा है। मैथिली भाषा, भाषा शास्त्र की दृष्टि से हिन्दी की विभाषा नहीं है। हिन्दी मध्यदेशीय प्राकृत शौरसेनी की दुहिता है तो मैथिली का विकास प्राच्य प्राकृत मागधी से हुआ है। मागधी बिहार की भाषाओं में सबसे प्रमुख है। मागधी की भौगोलिक स्थिति पश्चिमी हिन्दी से बहुत दूर होते हुए भी पूर्वी हिन्दी के समीप होने से उसको साहित्यिक दृष्टि से हिन्दी के अंतर्गत लाने की चेष्टा की जाती है। दूसरी ओर बंगाली के अत्यधिक निकट होने के कारण ,तथा विद्यापति के पदों का बंगाल के वैष्णव संप्रदाय में प्रचार के कारण मैथिली का समावेश बगला में कर लिया गया विद्यापति बंगाली तक मान लिये गये थे।

विद्यापति की पदावली की भाषा में अ आ इ ई उ ऊ, ए ऐ ओ औ शुद्ध स्वर ध्वनियाँ तथा अइ, अउ ध्वनि युग्म पाए जाते हैं। व्यजन ध्वनियों में से श ण, ङ ञ ण के अतिरिक्त प्राय. सभी व्यजन ध्वनियाँ पाई जाती हैं। विद्यापति की भाषा में स श ष तीनों मे से केवल स ध्वनि ही पाई जाती है। लिपि मे वैसे श तथा ष मिलते हैं पर इनका उच्चारण स तथा ख था। इसी कारण कई स्थानों पर लिपि में ष तथा ख दोनों 'ष' के लिये प्रयोग मिलता है, पर उन्हें अलग से ध्वनि नहीं

माना जा सकता। ण ध्वनि का पदावली की भाषा में अभाव ही मानना होगा, वैसे लिपि में ण ध्वनि का संकेत मिलता है। पर यह संकेत तत्सम संस्कृत शब्दों में ही है। तद्भव शब्दों में ण ध्वनि का सर्वथा अभाव है तथा आज भी मैथिली में 'ण' ध्वनि नहीं है। विद्यापति की भाषा में 'ड' ध्वनि पाई जाती है, जो स्वर मध्यगत 'ड' तथा 'ल' दोनों का विकास रहा है। पदावली के कई हस्तलेखों में 'ल' ध्वनि का संकेत मिलता है, किन्तु आज की मैथिली में यह नहीं पाई जाती। संभव है यह हस्तलेखों की ही विशेषता हो। संस्कृत की यह ध्वनि पदावली की भाषा में ज हो जाती है। वैसे लिपि में संस्कृत वर्तनी का प्रभाव पाया जाता है। यही कारण है कि पदावली की भाषा में 'यामिनी' 'जामिनी' जैसे दोनों रूप मिलते हैं। पर यह अनुमान करना असंगत न होगा कि उस शुद्ध संस्कृत तत्सम रूप के उच्चारण में भी य का उच्चारण ज ही रहा होगा।

विद्यापति के शब्द रूप में प्रातिपादिक अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए तथा ओ अन्तवाले पाए जाते हैं, यथा भमर, पिआ, जउनि, मजरी, वलमु, कान्हू, उपए, पाओ से प्रातिपादिक रूप पुलिंग तथा स्त्रीलिंग दो लिंगों मे पाए जाते हैं। मैथिली में प्राय. इकारान्त शब्द स्त्रीलिंग माने जाते है जैसे 'हाथि' वहाँ स्त्रीलिंग है। इसी तरह दीर्घ ईकारान्त शब्द भी स्त्रीलिंग होते हैं। हाथि, आँखि, आँखी, सराइनि, मोति आदि स्त्रीलिंग शब्द

विद्यापति की भाषा में हैं। वहुवचन के बोधन के लिये पश्चिमी हिन्दी या पूर्वी हिन्दी की तरह यहाँ कोई प्रत्यय नहीं पाया जाता। किसी एक वचन रूप के साथ जन, सवे, गन, सकल जोड़कर बहुवचन का भाव वोधन कराया जाता है।

विभक्तियो तथा कारकों का बोधन विद्यापति की भाषा में दो तरह से कराया जाता है १. केवल प्रातिपादिक रूप के द्वारा तथा कभी-कभी उसके साथ ए, ए, हि, हिं जोडकर और २. परसर्गों के प्रयोग के द्वारा। इस प्रकार कर्ताकारक के इन विभिन्न रूपों के ये उदाहरण दिए जा सकते हैं 'नयन भुलल' काम, घनइन सवे सरीरे, जलदहि राखल दुहु दिसि लाज। अन्य कारकों के लिये जो परसर्ग प्रयुक्त होते हैं, वे ये हैं :

१. सबंध कारक एरि, के, का, क, कोर, केर
२ संप्रदान का, कॉ, के
३. कर्म काए
४. अधिकरण के, कें, कए, माझ, माझे, मह

सर्वनामों मे पुरुषवाचक रूप मएं, हम, हमें, तएँ, तू, तुमि पाए जाते हैं। इन्हीं के विकारी रूप म, मो, मोहि, मोहे, मोर, मोरा, मोरि, हमार, हमारा, तोह, तोहि, तोहे, तोर, तोरि, तोरा, तोहार, तोहरा, तुअ पाए जाते हैं।

विद्यापति की भापा के क्रियारूपों में वर्तमान, भविष्यत् तथा भूतकाल तथा आज्ञात्मक, विद्यात्मक एवं हेतुहेतुमत् रूप

पाए जाते हैं। ये क्रियारूप णिजन्त (प्रेरणार्थक) भी होते हैं। वर्तमान तथा भविष्यत् के रूपों के लिये अलग से तिङन्त चिह्न पाए जाते हैं, जब कि भूतकाल के लिये प्रायः भूतकालिक कृदन्त प्रत्ययों से काम लिया जाता है। वर्तमान के रूप यों हैं चिन्हिमि (उ० पु०) चिन्हिसि (म० पु०), चिन्हि (अ० पु०)। भविष्यत के रूपों के तिङन्त चिन्ह प्रायः वर्तमान जैसे ही हैं। इसमें उ प्रत्यय का प्रयोग प्राय. उत्तम पुरुष अन्य पुरुष रूपों के साथ ही देखा जाता है तथा वे लिंग भेद के साथ बदलते नहीं 'हमे साजु अभिसार'। ल प्रत्यय वाले रूप संस्कृत कृदन्त (भूतकालिक कृदन्त)से सम्बद्ध हैं। 'पिउल' छिउल 'भेल देल गेल आदि में यह भूतकालिक 'ल' प्रत्यय देखा जा सकता है। विद्यापति की भाषा में 'अछ' तथा 'थ' ये दो सहायक क्रियाएं देखी जाती हैं। क्रियारूपों के अतिरिक्त विद्यापति की भाषा में क्रियारूपों से बने कृदन्त रूप भी देखे जा सकते हैं।

विद्यापति की पदावली की भाषा में हमें उस काल की मैथिली के वास्तविक लक्षण मिलेंगे। कीर्तिलता की भाषा कृत्रिम अपभ्रंश है, जो विद्यापति के समय, मृत हो चुकी थी जब कि विद्यापति की पदावली की भाषा जन जीवन में तरलित थी। यही कारण है कि भाषा के अध्ययन की दृष्टि से पदावली की भाषा 'कीर्तिलता' की भाषा से अधिक महत्त्वपूर्ण कही जा सकती है। आज की मैथिली की विकासावस्था के चिह्न पदावली की भाषा में स्पष्ट हैं।

विद्यापति के पद

अब हम यहाँ विद्यापति के पदों पर विचार करेंगे। वस्तुतः विद्यापति ने पदों की रचना नहीं की है। गीतों की रचना की है। मैथिली गीतों की परम्परा आठवीं सदी में सिद्धों से आरंभ होती है। अनेक सिद्धों का मिथिला से घनिष्ट सम्बन्ध था। कुछ विद्वानों का मत है कि गीतों की परम्परा जयदेव से चली है। किन्तु सिद्धो के गेय पदों को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि यह परम्परा जयदेव से भी पहले से है। जयदेव के पदों मे जिस तरह राग आदि का उल्लेख है, ठीक उसी प्रकार सिद्धों के गीतों मे भी है। गीतों की जो धारा सिद्धों से आरम्भ कर जयदेव तक आकर पुष्ट हुई वह क्रमिक रूप में आगे बढ़ती गई। उनके परवर्तियों ने गीतों को रचनाएं की राग और ताल से निवद्ध। गीतों में रागों का नाम देना एक आवश्यक अंग हो गया, जिसे उस समय के किसी भी सग्रह मे देखा जा सकता है। सिद्धों की यह परपरा जयदेव से होती हुई विद्यापति मे पूर्णता पर पहुँच गई। विद्यापति ने संस्कृत और अपभ्रश से छन्दों और रागों की परम्परा ही नहीं ली, भाव भी लिए।

विद्यापति के पद गेय मुक्तक हैं। मुक्तक पदों मे कवि की स्वानुभूति, उसकी कल्पना तथा भावुकता का प्राचुर्य होता है। मुक्तक पद किसी वाह्य विपय के द्वारा सकुचित नहीं होते, जैसा

कि विपय प्रधान काव्यों में होता है। वस्तुतः आत्मानुभूति की प्रधानता के कारण ही मुक्तक काव्य अधिक प्रभावोत्पादक हो जाते हैं। आत्मानुभूति का उन्मेष ही मुक्तक पदों को गीतिमत्ता प्रदान करता है। यहाँ गेय तत्त्व तथा काव्य तत्त्व एक दूसरे में इतने घन संश्लिष्ट हो जाते हैं कि उन्हें अलग नहीं किया जा सकता। गीतिमत्ता तथा काव्योचित भाव (प्रवाहित) प्रवणता इन दो तत्त्वों के अपूर्व मिश्रण के कारण ही विद्यापति के पद लोकगीत की श्रेणी में आ गए हैं। उनमें मधुरता इस प्रकार भर गई है कि वे निरन्तर ५०० वर्षों से मैथिल रमणियों के कंठहार बन गए हैं।

मोटे रूप में विद्यापति के पदों को दो पक्षों में बाँटा जा सकता है। १. शृंगार परक पद और २. शृंगार से भिन्न पद। दूसरे भाग में उन गीतों की गणना की जाती है, जो शिव, दुर्गा, गंगा तथा कुछ विष्णु के प्रति भक्तिपरक हैं। इनके अतिरिक्त इस विभाग में शिवसिंह के युद्ध वर्णन के पदों को भी रखा जा सकता है। किन्तु इस विभाजन के बाद भी सभी पदों में शृंगार का भाव शेष रह ही जाता है। वस्तुतः विद्यापति के शान्त या भक्ति के पद तथा वीर रस के पदों को निकाल देने पर जो बच रहता है, वही विद्यापति का हृदय है। विप्रलंभ में विद्यापति का मन उतना नहीं रमा, जितना संभोग शृंगार में। प्राचीनों का मत है 'शृंगं कामोद्रेकमृच्छतीति शृंगारो (कर्मण्यण्। पा ३।२।१) अर्थात् रतिक्रीडादि के लिये

यदि पुरुष स्त्री के साथ अथवा स्त्री पुरुष के साथ संभोग करने की कामना करती है तो उससे आदि वा शृंगार रस का आविर्भाव होता है। विद्यापति के पदों में इसी भाव की प्रधानता है अतः विद्यापति शृंगारी कवि हैं। विद्यापति के पदों का विश्लेषण करने पर विशुद्ध रूप से प्रेमी तथा प्रेमिका का एक दूसरे के प्रति मन्मथोद्भेद स्पष्ट हो जाता है। शृंग शब्द का अर्थ मन्मथोद्भेद कामोद्दीपन है। अतः विद्यापति शृंगारी कवि हैं। विद्यापति के पदों में कहीं कृष्ण आश्रय है तो कहीं राधा। पर सर्वाधिक स्थलों में ये कृष्ण मैथिल तरुण और राधा मैथिल तरुणी है। सूर की राधा भक्ति की प्रतीक है, पर विद्यापति की राधा वैसी नहीं है। वह कामोद्दीप्त नायिका मात्र है। हाँ, बुढौती मे जाकर विद्यापति सरीखे कवि को भी भक्ति सूझी।

विद्यापति सुख विलास के कवि हैं। उनके संभोग शृगार में अपूर्वता है। संभोग शृगार के अन्तर्गत कौतुक, प्रेमालाप, भावोल्लास, छलना, सखी सभाषण के एक से एक सुन्दर पद विद्यापति की रचना में मिलते हैं। किन्तु विद्यापति के संभोग शृगार मे भी बहुत कुछ परम्परा की छाप है। संस्कृत के शृगारी कवियों का भाव है, पर फिर भी इसमे उनका अपना कुछ भी है। विद्यापति जगत में प्रेम को, सभोग शृगार को सार वस्तु मानते हैं और विरह ताप नहीं सह पाते विरह में कातर हो उठते हैं। कहने का अर्थ इतना ही है कि विप्रलंभ की अपेक्षा

संभोग शृंगार में विद्यापति का मन अधिक रमता रहा है। कुछ विद्वान प्रणय-मान के पदों को विप्रलंभ मानते हैं, किन्तु वस्तुत प्रणय-मान संभोग शृंगार का एक अंग है। विप्रलंभ वाले पदों में कई पद प्रवत्स्यत्पतिका तथा प्रोषित-पतिका के हैं, कुछ पदों में दूती के वचन हैं, जिनमें नायिका के विरहजनित तापों से व्याकुल स्थिति का वर्णन है। पर उनमें वास्तविकता नहीं है, वे कल्पित विरह हैं। हाँ, आगे चलकर विद्यापति में जब भक्ति का उदय हुआ, तो उनके पदों में अतीन्द्रिय विरह का दुःख उभर आया। पर ऐसे पद बहुत कम हैं। निश्चय ही अन्त में विद्यापति ने कहा :

> हेहरि, मन्दो तुअ पद नाय।
> तुअ पद परिहरि पाप पयोनिधि
> पारक कओन उपाय।

विद्यापति के पदों में उत्तम ध्वनि-काव्य के लक्षण हैं। उनके पदों की तुलना अमरुक के पदों से भी की जा सकती है। स्व० प० शिवनन्दन ठाकुर ने 'महाकवि विद्यापति' में ऐसा अध्ययन प्रस्तुत भी किया है। विद्यापति के पदों में अलंकार सर्वत्र है। किन्तु अलंकार के लिये विद्यापति ने एक भी पद की रचना नहीं की है जैसा कि पिछले खेवे के हिन्दी के अनेक प्रसिद्ध कवियों ने किया। अत विद्यापति के सभी अलंकार सहज-सुन्दर हैं। विद्यापति के पदों में अनुप्रास, यमक, अनन्वय, अतिशयोक्ति, रूपक, उपमारूपक, विरोधाभास,

अर्थान्तरन्यास, यथासख्यक, परिकर, तिरस्कार, व्यतिरेक, एकावली, मीलित, पर्यायोक्ति, यथासंख्य, आक्षेप, स्मृति, विनोक्ति, इष्टान्त, दृष्टान्त, विषम, अपन्हुति, अप्रस्तुत प्रशसा, तद्गुण, असंगति, विशेष, काव्यलिंग, सदेह, श्लेष आदि के एक से एक सुन्दर उदाहरण भरे पड़े हैं। वस्तुतः विद्यापति अपने युग के सर्वश्रेष्ठ कवि थे और उनमे श्रेष्ठता के सभी गुण विद्यमान थे।

विद्यापति ने नायिका-भेद को दृष्टि से अपने पदों की रचना नहीं की थी और उनके पदों में कोई एक कथा-सूत्र भी नहीं है। किन्तु संग्रहकर्ताओं ने नायिका-भेद की दृष्टि से ही विद्यापति के पदों को सजाया है। अब यहाँ विद्यापति के पदों के कुछ उदाहरण भी आवश्यक हैं। प्रस्तुत पद में प्रेमी कृष्ण की लीला की एक मनोरम झाँकी है :

नन्दक नन्दन कदवेरि तरु तरे,
धीरे-धीरे मुरली बजाव।
समय सकेत निकेतन बइसल,
वेरि वेरि बोलि पठाव।

सामरि,
तोरा लगि अनुखन विकल मुरारि। टेक।
जमुनाक तीर उपवन उदवेगल,
फिरि फिरि ततहि निहारि।

गोरस बेचय अवइत जाइत
जनि जनि पूछ बनमारि ।
तोहें मतिमान, सुमति, मधुसूदन,
बचन सुनह किछु मोरा ।
भनइ विद्यापति सुन बर जौवति,
बंदह नंद किशोरा ।"

अब राधा के मुँह से कृष्ण प्रेम की अनुभूति की व्याख्या भी विद्यापति के निम्नलिखित पद में देखें :

सखि, कि पुछसि अनुभव मोय ।
सेहो पिरित अनुराग बखानिए
तिल तिल नूतन होय ।
जनम अवधि हम रूप निहारल,
नयन न तिरपित भेल ।
सेहो मधुर बोल स्रवनहि सुनल,
स्रुति पथे परस न गेल ।
कत मधु जामिनि रभस गमाओल
न बूझल कइसन केलि ।
लाख लाख जुग हिय हिय राखल
तइओ हिय जुडल न गेल ।
कत विदग्ध जन रस अनुमोदई,
अनुभव काहु न पेख ।
विद्यापति कह प्रान जुडाएत
लाखे न मिलल एक ।

अब विद्यापति का तीसरा पद देखिये। इसमें उन्होंने विरह-दशा का कैसा दारुण चित्रण किया है।

के पतिआ लए जायत रे मोर प्रियतम पास,
हिय नहि सहय असह दुखरे भेल सओन मास।
एकसरि भवन पिया बिनु रे मोरा रहलो ने जाए
सखि अनकर दु.ख दारुण रे जग के पतिआए।
मोर मन हरि हरि लयगेल रे अपनो मनगेल
गोकुल तजि मधुपुर बस रे कत अपजस लेल।
'विद्यापति कवि गाओल रे धनि धरु प्रिय आस,
आओत तोर मन भावन रे एहि कातिक मास।'

जहाँ विद्यापति ने राधाकृष्ण संबंधी शृंगारिक रचनाएँ उपस्थित कीं, वहीं उन्होंने शिव, गंगा, जानकी तथा दुर्गा सबंधी अपने भक्ति के पद भी लिखे, जो मिथिला में अत्यन्त प्रिय तथा प्रसिद्ध हैं। उनके शिव सबंधी पद 'नचारी' कहे जाते हैं। इन 'नचारी' का सबंध नृत्य से है तथा ये गीत मुगल बादशाह के समय में भी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे। तभी तो अबुलफजल कृत 'आइने अकबरी' मे भी 'नचारी' का उल्लेख मिलता है। इनके गंगा विषयक गीत भी बड़े प्रसिद्द हैं।

——.०.——

विद्यापति के सम-समायिक

डॉ० जयकान्त मिश्र ने अपने 'मैथिली साहित्य के इतिहास' मे विद्यापति के समसामयिक निम्नलिखित अट्ठाईस कवियों का उल्लेख किया है :

१ *अमृतकर*.—ये महाराज शिवसिंह के मन्त्री तथा चन्द्रकर कायस्थ के पुत्र थे। इनकी कविता की भणिता से सिद्ध होता है कि ये विद्यापति के समसामयिक थे तथा विद्यापति ने इनकी प्रशंसा मे एक पद भी लिखा था।

२ *चंद्रकला*—ये विद्यापति की पुत्र-वधू थीं। विद्यापति के तीन पुत्र बतलाए जाते हैं। उनके नाम हरपति, नरपति और वाचस्पति। चन्द्रकला कदाचित् हरपति की ही पत्नी थीं।

३. *हरपति*.—ये कदाचित् विद्यापति के ज्येष्ठ पुत्र थे। संस्कृत में लिखित 'ज्योतिष-शास्त्र व्यवहार-प्रदीपिका' कदाचित् इनकी ही रचना थी। इस ग्रंथ के कठिन स्थलों का रूपान्तर इन्होंने मैथिली पदों में दिया है।

थे, यह कहना कठिन नहीं तो निश्चय करना आसान नहीं। इस उपाधि के चार राजा हुए हैं। हो सकता है कि जीवनाथ का संबंध राजा शिवसिंह रूपनारायण से हो।

१६ *लक्ष्मीनारायण* (लक्ष्मीनाथनारायण) १७ *गोपीनाथ*, १८ *वीरनारायण*, १९ *धीरेश्वर*, २० *भीष्म कवि*, २१. *गंगाधर*।

इन कवियों की भणिता से यह प्रकट होता है कि इनका संबंध मोरंग के राज-दरबार से था। मोरंग मिथिला की उत्तरी सीमा पर नेपाल राज्य में है। यहाँ के राजा विद्याव्यसनी और कवियों तथा विद्वानों का आदर करनेवाले थे। हिन्दी के कवि भूषण ने भी अपने एक पद मे मोरंग का उल्लेख किया है।

२२ *लखिमीनाथ*—ये मैथिली के अत्यधिक प्रसिद्ध कवि थे। इनकी तिथि का निश्चय करना कठिन कार्य है क्योंकि प्रथम तो मिथिला मे इस नाम के कई प्रसिद्ध व्यक्ति हुए। द्वितीय भणिताओं मे भी मतमतान्तर मिलते हैं। राज पुस्तकालय, दरभंगा मे उपलब्ध हस्तलिखित प्रति के अनुसार ये राजा कृष्णनारायण के दरबारी कवि थे। किन्तु एक दूसरे उल्लेख से विदित होता है कि वे स्वयं राजा थे। ऐसा प्रतीत होता है कि राजा लक्ष्मीनाथ और दरबारी कवि लखिमीनाथ विभिन्न व्यक्ति थे।

२३ *श्यामसुन्दर*—कमलावती देवी के प्रति राजा कृष्ण-नारायण के आश्रय मे श्यामसुन्दर का उल्लेख मिलता है।

२४. *कंसनारायण* (१४६३—१५२७)—शिवसिंह के पश्चात् मैथिल कवियों के सबसे बड़े आश्रयदाता थे। ये भी कवि थे। इन्होंने अपनी कविता में नशीराशाह का उल्लेख किया है, जो बंगाल के राजा हुसेनशाह का पुत्र नसरतशाह (१५१८ से ३१) प्रतीत होता है। हुसेनशाह ने मिथिला को जीता था।

२५. *गोविन्द*, २६. *कालीनाथ*, २७ *रामनाथ*, २८. *श्रीधर*।

गोविन्द वस्तुत. कंसनारायण के आश्रित कवि थे। गोविन्द की तिथि निश्चित करने में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि इस नाम के अनेक प्रसिद्ध व्यक्ति मिथिला में हो चुके हैं। बहुत सभव है कि गोविन्द और म० म० गोविन्द ठाकुर एक ही हों। इन्होंने काव्य-प्रकाश की टीका 'काव्य-प्रदीप' की रचना की। इनके पुत्र देवनाथ ठाकुर ने 'मत्र कौमुदी' नामक ग्रंथ सन् १५५८ में लिखा। गोविन्द की भाषा प्राजल है।

कालीनाथ के संबंध में कुछ भी ज्ञात नहीं है तथा रामनाथ ने कहीं भी कंसनारायण के आश्रय में रहने का उल्लेख नहीं किया है। पर कंसनारायण की रानी सोरमा का उल्लेख अपनी कविता में अवश्य किया है। श्रीधर ने अपने को फिरोजशाह का समसामयिक बतलाया है।

सारांश

कंसनारायण वस्तुत. मिथिला के ओइनिवार वश के अन्तिम राजा थे। इस वश ने मैथिली भाषा एव साहित्य के अभ्युत्थान में अत्यधिक सहयोग किया। इसी युग में विद्यापति

अमृतकर, चतुर चतुर्भुज, गोविन्द, भीष्म, कसनारायण आदि प्रसिद्ध कवि हुए। इस वंश के राजा तथा रानियाँ सभी सुसस्कृत थे। उन्होंने साहित्य और कला को उन्नति के शिखर पर पहुँचाने का यथाशक्ति प्रयास किया। मैथिल कवियों को अपने यहाँ आश्रय दिया। विद्यापति की अनेक कविताए तो शिवसिंह और उनकी रानी लखिमा को संबोधित करके लिखी गयी हैं। अमृतकर आदि कवियों ने भी राजा और रानी के नामों का उल्लेख अपनी रचनाओं मे किया है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि यह मिथिला की विशेषता थी। वस्तुतः इस युग के सबसे बड़े कवि विद्यापति ही थे। ओइनिवार वंश की समाप्ति के पश्चात् मैथिली साहित्य के इतिहास में भारी संकट आया और मैथिली भाषा का केद्र मिथिला से नैपाल चला गया। वहाँ पर मैथिली कविताओं का स्वागत हुआ।

——:०:——

विद्यापति के उत्तराधिकारी (१५२७ १७०० ई०)

विद्यापति के उत्तराधिकारियों के सबंध में विचार करने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि इनका समय मैथिली कालक्रम के अनुसार मैथिली साहित्य के मध्ययुग मे आता है। सुविधा के लिये इनका वर्णन दिया जाता है।

विद्यापति के उत्तराधिकारियों मे कुछ तो मिथिला में हुए और कुछ नैपाल में। प्रथम मिथिला के कवियों के सबध में विचार करके तदनन्तर नैपाल के कवियों के सबंध मे विचार किया जायगा।

मिथिला

१. *हरिदास*—व्रजबूलि[1] साहित्य में हरिदास का नाम अत्यधिक प्रसिद्ध है, किन्तु जिस हरिदास के सबंध में यहाँ

---

[1] मैथली और बगला मिश्रत भाषा को 'व्रजबूलि' कहते है। यह एक कृत्रिम भाषा है। कलकत्ता विश्वविद्यालय के डा० सुकुमार सेन ने व्रजवूलि साहित्य का इतिहास अंगेजी में प्रकाशित किया है। कविवर रवीन्द्र ने भी 'भानुसिंह' ठाकुर के नाम से व्रजवूलि में कविता की है।

उल्लेख किया जा रहा है, वह कदाचित् गोविंददास (१६४३-७०) के भाई थे। इनकी केवल एक नचारी[1] प्राप्त हुई है।

२. *महेश ठाकुर*—(१५५६-६६) मिथिला में नये राजवंश की स्थापना के समय उसके साथ-साथ साहित्य तथा कला की अभिवृद्धि का सूत्रपात हुआ। इस वंश के सस्थापक महेश ठाकुर स्वयं मैथिली के कवि थे। १५६६ में राज्यपरित्याग करके उन्होंने काशीवास किया। यहीं पर गंगा और तारा के संबध मे कतिपय पदों की रचना की है। सस्कृत तथा दर्शन के प्रकांड पंडित होते हुए भी अपने हृदयगत भावों को अत्यन्त सरल मैथिली मे अभिव्यक्त किया है।

३ *भगीरथ कवि*—भणिता में आपके कतिपय पदों का उल्लेख मिलता है। कहीं-कहीं 'भरथ' नाम भी आया है। कदाचित् ये दोनों नाम एक ही हैं। एक पद में तो 'मानसिह' (मृत्यु १६१८) का भी उल्लेख मिलता है। मानसिह भाषा कवियों के वड़े पोपकों मे से थे।

४. *महिनाथ*—(१५५६-७१, १६६०-६३ ई०)

५ *लोचन*—महाराज महिनाथ ठाकुर ने स्वय मैथिली मे कविता की है। इनके छोटे भाई नरपति ठाकुर थे। इन दोनो भाइयों की संरक्षता मे मिथिला मे साहित्य और सगीत-कला की विशेष उन्नति हुई। लोचन वस्तुत. इस युग के सबसे

---

१. शिव संबधी पदों को मिथिला में 'नचारी' कहते है।

बड़े कलाकार हैं। संगीत शास्त्र के संबंध में आपकी पुस्तक 'राग तरंगिणी' मध्ययुग की श्रेष्ठ कृतियों में से है। इसके कई संस्करण विभिन्न स्थानों से प्रकाशित हुए हैं।

लोचन को लोग पहले वंग देश का निवासी समझते थे। किन्तु अब यह निश्चित हो चुका है कि वे मैथिल थे। मैथिली के अतिरिक्त लोचन मध्यदेश की भाषा हिन्दी से भी सुपरिचित थे। उन्होंने अपने ग्रन्थ में अपने पदों के बाद प्रायः विद्यापति के पदों को लिया है। इनकी कविता शृंगार रस की हैं। नीचे एक पद उद्धृत किया जाता है। इसमें अभिसारिका का वर्णन है :

आनद कन्दा पुनिमक चन्दा सुमुखि वदन तह मन्दा।
अधरे मधुरी मामरि सुन्दरी विहुसि जिवए मित कुसुम सिरी।
पर्यामलति वनी, दामिनी सनि नजराज जनी।
चिकुर चामरा मुदिर सामरा नलिन नयन सुएकरा।
काम रमनी जहिनि तहिनी दसन चमक जनि हीर कनी॥
उकुति येकतो वुझलि जुगुती कामिनी मनावति पती।
विजुरि उजरी रजनि गुजरी इति टोमरि अगुसरी॥
'लोचन' वानी सुवनु सयानी कन्त भजवि जलराजगनी।

'लोचन' ने 'राग तरंगिणी' में रागों के उदाहरण में अन्य कवियों के गीत भी दिये हैं। विद्यापति के गीत भी इसमें बहुत मिलते हैं। मैथिली इतिहास के अनुसंधानकों को इसमें अनेक

ऐसे कवियों की रचनाएँ प्राप्त होती हैं जो अन्यत्र उपलब्ध नहीं हैं जिससे इस ग्रन्थ की उपादेयता बढ़ जाती है।

इसके अतिरिक्त संगीत शास्त्रियों को इस ग्रन्थ से अनेक नवीन विषयों का पता चलता है। मिथिला मे उस समय संगीत की परंपरा किस रूप में थी तथा लोग गीतों को किस रूप में गाते थे आदि का यथेष्ट सामान इसमें प्राप्त होते हैं।

६ *गोविंददास*—विद्यापति के सबसे श्रेष्ठ उत्तराधिकारी गोविंददास थे। विद्यापति की भाँति ही ये भी बंगाली ही समझे जाते थे। किन्तु बाबू नगेन्द्रनाथ गुप्त ने इस भूल में सुधार किया और स्पष्ट शब्दों मे स्वीकार किया है कि गोविंददास बंगाली नहीं अपितु मैथिल हैं। चेतनाथ झा तथा चन्दा झा ने भी इसका समर्थन किया है और मथुरा प्रसाद दीक्षित ने भी उनके पदों को प्रकाशित किया है। चन्दा झा के संग्रह के आधार पर प० अमरनाथ झा नें गोविंददास के पदों का एक मैथिली संस्करण प्रकाशित किया।

गोविंददास की जीवनी के संबंध में पर्याप्त सामग्री मिथिला मे प्राप्त हैं। कहा जाता है कि उन्होंने 'कृष्ण लीला' नामक ग्रंथ की रचना की थी। कदाचित् राधाकृष्ण संबंधी पदों के कारण इन्हें 'कृष्णलीला' ग्रंथ का रचयिता कहा है। गोविंददास के पदों में अलंकारों की छटा विशेष रूप से दर्शनीय है।

उन्होंने वर्ण साम्य के लिये अनुप्रास का भी उचित प्रयोग किया है। उनके पदों में तत्सम शब्दों का बाहुल्य है। राधा का अभिसार विषयक एक पद नीचे दिया जाता है :

"कंटक गाढ़ि कुसुमसम पदतल मजिर चीरंहि झापि।
गागरि बारि बारि करि पिच्छल चल तह अंगुलि चापि॥
माधव तुम अभिसारक लागि॥
दुरतर पन्थगमन धनिमाधय मंदिर यामिनि जागि॥
कर युग नयन मूंदि चलु भाविनि तिमिर पयानक आशे।
कर कंकण पन कनि सुखधन शिखय भुजगगुरु पाशे॥
गु॰जन वचन बधिर सम मानय आन सुनय कह आन।
परिजन वचन मुगुधि सम हासय गोविंददास परमान॥"

कृष्ण विरह से कातर राधा के विलाप संबधी गोविंददास के पद उद्धृत किये जाते हैं .

आचर मुखशशि गोय। झर झर लोचन रोय॥
कारण बिनु घन हास। उतपत दीह निशास॥
सुनु सुनु सुंदर श्याम। प्रेमक इह परिनाम॥
तातल वनु नहिं टूटइ। सतत महीतल लूटइ॥
काहु किछु नहिं कहय। के अस वेदन सहय॥
जगभरि कुलवति वाद। के दय करय सवाद॥
गोविंददास आसो आस। जीवय तुअ अभिलास॥

गोविंददास ने एक अच्छे वैष्णव कवि की तरह कृष्ण विषयक पदों की रचना की। शब्दों पर इनका अधिकार था। अनुप्रास इनका प्रिय अलंकार था। इनके गीतों में भी विद्यापति की भांति रागों का नामोल्लेख मिलता है।

प्राचीन है तथा दोनों स्थानों से आवागमन जारी था। वहां पन्द्रहवीं शताब्दी से लेकर सत्रहवीं शताब्दी तक अनेक नाटकों की रचना हुई, जिनके लेखकों में शंकरदेव, गोविंद देव आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त उड़ीसा में रामानंद राय आदि ने विद्यापति काव्य परंपरा में अनेक रचनाए की जो 'व्रजबुलि' संग्रहों में प्राप्त होते हैं। अत. स्पष्ट हो जाता है कि विद्यापति का प्रभाव केवल मिथिला तक ही सीमित नहीं रहा, प्रत्युत् इनसे आसाम, बंगाल, नेपाल तथा व्रज भी प्रकाशित हुआ।

विद्यापति के पदों का मैथिली साहित्य पर काफी प्रभाव पड़ा। उनकी गीत काव्य की परंपरा का गोविंददास तथा जितामित्र तक ही सीमित नहीं बल्कि इस परंपरा ने मैथिली के नाटक साहित्य को भी प्रभावित किया। इसी परपरा का अवलंबन करते हुए सस्कृत नाटक के लेखकों ने भी अपनी कृतियो में मैथिली पदो को स्थान दिया और आगे चलकर तो 'कीर्तिनियाँ नाटक' पदों मे ही तैयार होने लगे। सच बात तो यह है कि विद्यापति तथा उनके समकालीन कवियो के पदों ने उनके बाद के कवियों को सदैव प्रभावित किया और एक विशेष प्रेरणा प्रदान की।

——:o:— —

मैथिली साहित्य का मध्ययुग

मैथिली साहित्य का मध्ययुग

संस्कृत नाटकों के आधार पर ही आधुनिक आर्य भाषाओं में नाटकों की रचना हुई। मुसलमानों के आक्रमण से नाट्य साहित्य की उन्नति मे बाधा हुई। कारण यह कि वे धार्मिक दृष्टि से कला के विरुद्ध थे। किन्तु यह बाधा बहुत दिनों तक न चली और भारत की भिन्न-भिन्न भाषाओं में नाटकों का प्रादुर्भाव विभिन्न आधार पर हुआ। बंगाल मे मध्ययुग में एक विशेष प्रकार के नाटक (यात्रा) का विकास हुआ। इसी प्रकार आसाम में 'अंकिया नाट्य' तथा मिथिला में 'कीर्तनियाँ नाटक' का प्रादुर्भाव हुआ। इन तीनों प्रकार के नाटकों की उत्पति वस्तुतः कृष्ण भक्ति से हुई। नाटकों को जब लौकिक रूप दिया गया तो उनमें पौराणिक कथाओ को स्थान मिला।

मध्ययुग के मैथिली नाटकों की सबसे बड़ी विशेषता उनकी सरलता थी। रंगमच साधारण होता था। नाटको में संगीत तथा नृत्य की प्रधानता होती थी। जनसाधारण को आकृष्ट करना इन नाटकों का उद्देश्य था। आधुनिक नाटकों में भिन्न चरित्रों का जो प्रायः मनोवैज्ञानिक विकास दिखाया जाता है,

उनका इस युग में प्रायः अभाव ही रहा है। कथानक में भी कोई नवीनता न थी।

प्रारंभ में नाटकों के दर्शक तो प्रायः राजा महाराजा एवं उनके दरवारी कवि ही हुआ करते थे। किन्तु धीरे-धीरे जनसाधारण भी इनकी ओर आकृष्ट हुआ। इस प्रकार मिथिला में संस्कृत से लेकर मैथिली भाषा के युग तक नाटकों की परंपरा अक्षुण्ण रही।

मिथिला के नाटकों में मैथिली भाषा का प्रवेश

सर्वप्रथम विद्यापति ठाकुर (१३६०—१४४८) ने अपने संस्कृत नाटकों मे मैथिली का समावेश किया। मैथिली के जो साहित्यिक नेपाल में थे, उन्होंने विद्यापति से प्रेरित होकर अपने नाटकों मे मैथिली को स्थान दिया। किन्तु १६०० के वाद मैथिली में नाटकों की रचना होने लगी।

अत्यन्त प्राचीन काल से मिथिला और नेपाल का घनिष्ट संवध था। प्राचीन काल में वो मिथला का एक भाग नेपाल में था। आज भी कुछ मैथिली भाषा भाषी जिले नेपाल के अंतर्गत हैं। मिथिला की प्राचीन राजधानी जनकपुर तथा महाराज नान्य देव (१०६७) की राजधानी सिमरांव नेपाल के अन्तर्गत हैं।

कहा जाता है कि वहुत दिनों तक मिथिला और नेपाल से आने-जाने का मार्ग था। यही कारण है कि मुसलमान

आक्रमणकारियों से बचने के लिये मिथिला के राजा नेपाल भाग जाया करते थे। महाराज हरिसिंह देव को जब सन् १३२३ में मुसलमानों ने पराजित किया तो वे नेपाल चले गये और भटगांव को अपनी राजधानी बनाया। कुछ इतिहास लेखकों का यह कथन है कि यह घटना कभी नहीं घटी; किन्तु मैथिल पंजी तथा नेपाल वंशावली से यह बात सिद्ध हो जाती है।

हरिसिंह देव के दो पुत्रों मानसिंह देव तथा श्यामसिंह देव थे। श्यामसिंह की पुत्री का विवाह भी नेपाल राज्यवंश में हुआ और उनके साथ ही साथ मैथिली भाषा की प्रतिष्ठा दरबार में बढ़ी। इसके परिणामस्वरूप मैथिल विद्वानों एवं पंडितों को नेपाल दरबार में स्थान मिला। उदाहरण स्वरूप जयस्थिति मल्ल ने (१३८०—१३९४) मिथिला से कीर्तिनाथ उपाध्याय, रघुनाथ झा, श्रीनाथ भट्ट, महिनाथ भट्ट तथा रामनाथ झा को दाय भाग, वर्ण व्यवस्था तथा श्राद्ध संबंधी नियमों एवं विधानों के बनाने के लिये आमंत्रित किया। इसी प्रकार जगज्योतिर्मल्ल (१६१८—३३) ने वंशमणि झा को तथा तथा नरसिंह देव के पुत्र रामसिंह देव ने षट्कर शुक्ल (१४८५) को आमंत्रित किया। बाद के युग में भी कृष्णदत्त झा तथा शक्ति वल्लभ (१७७७—१८०५) एवं भाना झा को भी नेपाल दरबार में स्थान मिला। सच बात तो यह है कि मिथिला पर मुसलमानों के अधिकार एवं ओइनिवार

वंश के पतन के पश्चात् अनेक मैथिल पंडितों ने नेपाल में शरण ली।

इसका फल यह हुआ कि नेपाल मे मैथिली भाषा की प्रतिष्ठा हुई और भांटगाव, पाटन तथा काठमांडू में मैथिली भाषा की पूर्णरूप से स्थापना हुई। डा० बागची ने बंगीय साहित्य परिपद् पत्रिका (वंगाव्द १३३६ पृष्ठ १७२) में इस संबंध में अपना विचार प्रकट करते हुए लिखा है।

'नेपालेर प्राचीन वंशेर ओ प्रभाव सम्पन्न व्यक्ति देर शिक्षार भाषा छिल मैथिली, कारण तां देर अनेकेई मिथिला थेके गिये छिलेन"।

विद्यापति की पदावली तथा उनके उत्तराधिकारियो के पदों एव मैथिल संगीतज्ञों के प्रभाव के कारण मैथिली की ओर लोगों की अभिरुचि हुई। डा० बागची ने अपने उसी लेख में लिखा है।

"मिथिलार राजसभा तखन विद्यापतिर संगीते मुखरित हइछे। एइ संगीतओ ये क्रमे नेपाले गिये पौंछिवे ताते आर आश्चर्य कि"।

इसी बीच नेपाल मे नाटकों की ओर जनता का आकर्षण बढा। नेपाल मे सर्वप्रथम सस्कृत नाटक जयस्थिति मल्ल (१३१८—६४) के शासन काल में लिखा गया था। उसने मिथिला से ही नाटकों के संबध मे प्रेरणा ग्रहण की और नेपाल मे उन प्रेरणा की मूर्तरूप देने का सुअवसर मिला। धरमपाल

के जन्मोत्सव पर रामायण नाटक खेला गया था। भैरवानन्द नाटकूम का संबंध भी जयस्थितिमल्ल से ही बतलाया जाता है। इसका लेखक भी कदाचित् माखिक नाम का कोई मैथिल था। यह नाटक जय स्थितिमल्ल के पुत्र धर्ममल्ल के विवाहोत्सव के अवसर पर खेला गया था।

जयस्थिति के उत्तराधिकारियो के शासन काल मे साहित्य तथा नाटक रचना की गति मन्द पड़ गई। इसका प्रधान कारण वस्तुतः उस समय की डवांडोल परिस्थिति थी। जयस्थिति का सबसे प्रसिद्ध उत्तराधिकारी पक्षमल्ल था जिसने ४३ वर्षो तक शासन किया। यह नेपाल पर्वत के सभी राजाओं पर विजय प्राप्त करके मिथिला होते हुए मगध तक पहुँचा था। उसके ज्येष्ठ पुत्र रायमल्ल ने भांटगांव की द्वितीय राममल्ल ने वनिया (वानीकपुर) की तथा कनिष्ट पुत्र रत्नमल्ल ने काठमांडू की स्थापना की। इन तीनों शाखाओं की स्थापना के पश्चात् पुनः साहित्यिक जागरण का युग प्रारंभ हुआ।

नेपाल के मैथिल नाटकों की विशेषता

आरंभ में मैथिलों ने नेपाल में सस्कृत नाटकों की रचना की, किन्तु १७वीं शताब्दी के मध्ययुग के नेपाल मे मैथिली नाटकों का प्रचलन हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि कि धीरे-धीरे सस्कृत नाटकों का स्थान मैथिल नाटकों ने ले लिया।

सुमतिजिता मित्र मल्ल (१६८२ई०) एक उत्साही साहित्यकार था। उसके द्वारा लिखित निम्नलिखित नाटक उपलब्ध हैं.—

१. कालीयमथनोपाख्यान १६८४) यह तीन अंकों में समाप्त हुआ है। २ मदालसाहरणम् (१६८७), ३ जैमिनीय भरत-नाटकम् (महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री के अनुसार इसी का नाम अश्वमेधनाटकम्) (१६६०) है। ४ गोपीचन्द्र नाटकम् (१६६०), ५. उषाहरण, ६ नव दुर्गा नाटकम् (१६८६) भाषान्तकम् तथा ८ भारतनाटकम् यह सबसे बड़ा है।

इन नाटकों की एक विशेषता यह है कि इनमें कई भाषाओं का प्रयोग किया गया है। उदाहरणस्वरूप गोपीचन्द्र नाटक बंगला में तथा भाषान्तकम का कुछ भाग नेवारी तथा अवशिष्ट मैथिली मे है। सभी नाटक अर्धनारीश्वर शिव की स्तुति में प्रारंभ होते हैं।

पूर्ववर्ती नाटककारों की अपेक्षा जितमित्रमल्ल का भाषा पर अधिक अधिकार है। इसका उदाहरण इस प्रकार है :

"सकल स्वरूप हर तिनि नयन, तुम रवि शशि अनलहु मूल

(भारत नाटक)

विमल रहय शिव सुरसरिधार, नाचत मगन शशि शेखरा

सुमति जितमित्र कह नृप ईश, देखु सदाशिव अभयवरा।"

(मदालसा हरण)

कुवलयाश्व—प्रिय शुन इन्द्रमुखी तेज तोहे मान।
तोरित अधर मधु देह रविदान ॥
तुम मम सीमन्तिनी न देजल थान।
दरशने मेल मोर थाकिते पराण ॥
(मदालसाहरण)

जितामित्रमल्ल की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र भूपतीन्द्र मल्ल (१६६५—१७२२) सिंहासनारूढ़ हुआ। उसने अनेक ग्रन्थों की रचना की। उसके शासन काल में निम्नलिखित नाटक रचे गए तथा उनका अभिनय किया गया :

१ माधवानल (१७०४), २ गौरीविवाह नाटक (१७०६), ३. पशुपति प्रादुर्भाव (१७११), ४. गोपीचन्द्र (१७१२) ५. उषा हरण (१७१३), ६ रुक्मिणी परिणय, ७ विद्या विलाप, ८ महाभारत, ६ एवं, १०. इन दो नाटकों के कुछ अवशिष्ट भाग मिले हैं किन्तु इनके नाम ज्ञात नहीं। ११. कंसवध कृष्ण चरित, १२ कोलसुर बधोपाख्यान, १३. पद्मावती नाटक, १४. जालन्धरोपाख्यान, १५ , जैमिनीय भारत नाटक तथा १६ मनोरंजन नाटक।

इन नाटकों में से कतिपय नाटकों की भाषा नेवारी तथा बंगला है। उदाहरणस्वरूप उषाहरण तथा पद्मावती नाटकम की भाषा में नेवारी का अधिक सम्मिश्रण है और गोपीचन्द्रोपाख्यान नाटकम् में बंगाली का। इन नाटकों में विभिन्न

प्रकार के गीतों का प्रयोग किया गया है। नीचे कुछ उदाहरण दिये जाते हैं :

"तोहे प्रभु नागर सुगुण आगर, रूपे मदन सयान।
सोरह चउगुण कलाक सागर, रसिक गुणगण जान हे।
नारि अलपमति आन नाहिं गति, कामे दहत शरीर।
जनम सफल कर आज पहुमोर, श्री भूपतीन्द्र भन वीर हे।"

"जगत जलधि तट तीर नहि होपि।
थिवक भजन विनुअ अओर निकोपी॥"

(रुक्मिणी परिनय)

इन गीतों में कहीं-कहीं छोटे-छोटे वाक्यों का समावेश हो गया है। उदाहरण नीचे दिया जाता है।

"हे लोके सभास्थान जायव चलू।
हे लोके सुनु।
(सर्व) महाराज आज्ञा करू। (माधवानल)
वेद पुरान नटेन परिपूरन्टप प्रसादे लोक चड़ शूर।
कोशि हमरहु मने तहने चलू।

(जालधरोपाख्यान)

जे हिमालयक एक पुत्री होऊ सो उपाय करू।

(गौरी विवाह)

अहे शिष्य सकल अनेक तीर्थ देखिलां, अत पर इकाशी
छाड़िया अन्यत् कदापि जाइ।"

(गोपीचन्द्रोपाख्यान)

(सूत्रधार नटी से)—हे प्रिये एतय आउ ।

हे इन्दू त्वरित विजय करू ।

(कोलासुरवधोपाख्यान)

उग्र हे लोके एहि प्रासाद मनाएक विश्राम करत ।

(सवै) महाराज अवश्य । (कंसवध कृष्ण चरित)

अंत में महाभारत तथा विद्यापति के संबंध मे विचार किया जाता है। इनका प्रकाशन वगीय साहित्य परिषद् से हुआ है। महाभारत (१७०२) २३ अंकों में समाप्त हुआ है। इसके लेखक कृष्णदेव कवि बतलाये जाते हैं। इस नाटक में व्यास तथा संजय भी रंगमच पर आते हैं और संक्षेप में कथा कहते हैं। समस्त नाटक गीतों में ही लिखा गया है। नीचे सातवें अंक में 'खांडवदाह' की घटना उद्धृत की जाती है।

"कृष्ण, अर्जुन, अग्नि पैसार ।
एखन जायब, मा ।
आसावरि ॥चौ॥

आज खांडववन कराओव दाह ।
होयत अगिनिक उच्छाह ।

आज खांडववन करोओव दाह ।
होयत अगिनिक्य उच्छाह ।

खांडवदाह—युद्ध ।
दाहको, भामा ।
पछाड़िया ॥

कश्रोन दरये तो हे कराश्रोब दाह ।
तुरित करब हमें तुश्र मुख श्याह ।
अर्ज्जुनोक्ति—युद्ध ।
रागतार पे० ॥

सुरपति न कह हम सजौ श्राजि ।
सुनो रे वोह वह कि होयत श्राजि ।
कृष्णार्जुन श्र नद निस्सार ।
प्रिय श्राय, मा ।
धूरिया मवलाल ।

श्रानंदे जायब तूरिते ।
अर्जुन भले धनंजय काज ।
चल श्रावे श्रनुक धामे ।
जितल समर ह सुर राज ।
पाश्रोल श्रायुध अभिरामे ।"

महाभारत के श्रंत में धृतराष्ट्र से निम्नलिखित रूप से विलाप कराया गया है :

"धृतराष्ट्रावि विलाप :
"हा भायि, मा ।
भख्यारि ।

शकलो तनय मोहि तेजि कहु गेल, कयल नाक पयान ।
विफल भेल श्रवे हमर जनम ।
नहिं जायि श्रछु मोर प्राण ।
सुयोधन जिवन श्रधार ।

वृद्ध वयस हमे पावल शोक,
हरि हरि के करव त्राण।
करम लिखल फल दुर नहिं जाय।
जयभूपतीन्द्र नृप भान।"

(विद्या विलाप में १७२०) की कथा मध्ययुग की अति प्रसिद्ध कथाओं में से है। कुमार गंगानन्द सिंह जी ने संक्षेप में इस कथा को निम्नलिखित रूप में दिया है:—

"उज्जैन मे वीर सिंह नामक एक राजा था। उसको विद्यावती नाम की एक पुत्री थी। वह वड़ी विदुषी थी और उसने प्रतिज्ञा की थी कि जो उसे शास्त्रार्थ मे पराजित करेगा उसी से विवाह करेगी। अनेक राजकुमार उससे विवाह करने के लिये आये। किन्तु उन्हे निराश होना पडा। इस कारण उसके पिता वहुत चिन्तित थे। उन्होंने सुंदर नामक अति मेधावी तथा विद्वान व्यक्ति को आमंत्रित किया। राजा ने सुन्दर को वुलाने के लिये उसके पिता गुणसिंधु के पास अपने राजकवि को कांची भेजा। राजकुमार सुन्दर ने विद्यावती की पहले से ही प्रशंसा सुन रखी थी और वे उससे विवाह भी करना चाहते थे। वे उज्जैन आये और राजा की मालिन के लड़के के घर गुप्त रूप से रहने लगे। जव सुन्दर का उससे घनिष्ट संपर्क हो गया तो उसने अपने हृदगत् वातें उससे कहीं और कार्य की पूर्ति के लिये उससे सहायता मांगी। उसने युक्ति पूर्वक सुन्दर और विद्यावती को मिला दिया। देखते ही दोनों

एक दूसरे के प्रति आकर्षित हुए। किन्तु उनका मार्ग निष्कंटक न हुआ। राजा तथा रानी को इस बात की खबर लग जाती है और वे दोनों पकड लिये जाते हैं। सुन्दर राजा के सामने लाया गया तथा उसे उचित दड दिया गया। इसी बीच राजकवि कांची से लौटा और उसने कहा कि बन्दी और कोई नहीं बल्कि गुणसिंधु का पुत्र सुन्दर ही है। इस पर राजा ने उसे मुक्त कर दिया और दोनों का व्याह कर दिया।

आगे चलकर गंगानन्द सिंह ने लिखा है कि यह कथा कदाचित् 'चौर पंचासिका' से ली गई है। इस कथा का नायक सुन्दर कुछ लोगों के अनुसार 'चौर कवि' ही था। जिसने 'चौर पंचासिका' की रचना की थी। कुछ लोगों का यह भी कहना है कि इस ग्रन्थ के लेखक वररुचि नामक कोई पंडित थे। इसी कथा को श्रीयुन भारतचन्द्र राय ने वंगला मे पद्यबद्ध किया था। महाराज यतीन्द्रमोहन टैगोर ने भी अपनी 'विद्या-सुन्दर' नाटक मे इसका उपयोग किया। भारतेंदु बाबू हरिश्चन्द्र ने तो हिन्दी मे अपने नाटक 'विद्यासुन्दर' के लिये यहां से सामग्री ली थी। सात दिनो के अभिनय के क्रम के अनुसार यह नाटक सात अकों में समाप्त हुआ। इसमें समय तथा स्थान के समन्वय पर ध्यान नहीं दिया गया है। इस नाटक से कुछ अश नीचे उद्धृत किया जाता है :

"गुण सागरादि प्रवेश।

कन्हार ॥

सागरतुलगुण गुणक निधान ।
विदितभुवनतरकेओ नहिं आन ।
कलावति प्रिया सगे करब प्रदेश ।
अनुपम अच्छ मोर रत्नापुरि देश ।
नृप भूपतीन्द्रमल्ल कयल वखान ।
नीति विनय गुण एहे भूप जान ॥"

और जब वे चले गये :

"गुण सागरादि निस्सार ॥
आनदे जायब चलू कलावति
अपन नगरि रहि करब समाज…"

प्रस्तुत प्रति में गद्य का अभाव है। इसमें कहीं-कहीं दैनिक जीवन को बातें भी आ गई हैं जिनकी ओर साधारण जनता का आकर्षण स्वाभाविक है। गीत सर्वत्र नहीं हैं, हां, विवाह के अवसर पर 'महेशवाणी' का गायन सर्वथा उपयुक्त है। यथा।

"कोवर, में
धनाश्री ।
जेजेह गौरी महेश, माथि हे ।
दुहू मेलाह अधर देह ।
विद्यादेवी सुदर देवा ।
दुहू वाढ़ओं नेह ॥
गायनो शांति धाक ॥"

नेपाल मे सबसे अधिक मैथिली नाटक रंजीतमल्ल (१७२२–७२) के सुदीर्घ शासन-काल में लिखे गये। ये इस वंश के अन्तिम राजा थे। इनके राजत्वकाल मे लिखे गये निम्न-लिखित नाटक हैं —

१ कृष्णचरित (१७३८), २. कृष्णकैलास यात्रोपाख्यान (१७४०), ३. उषाहरण (१७५४), ४ इन्द्रजयन्त नाटकम् (१७६४), ५ मान्धात्र्योपाख्यान ६. कोलासुखद्योपाख्यान (१७६६), ७. खट्वासुरवधोपाख्यान (१७६७), ८ अन्धकासुर वधोपाख्यान (१७६८), ६ कृष्णचरितोपाख्यान, १०. मदन चरित, ११. रामायण नाटक, १२ रामचरित, १३. माधवानल कामकंदला, १४ नलचरित, १५ रुक्मिणी परिनय, १६. रुक्मिणी हरण, १७. १८ त्रिपुरासुर वधोपाख्यान नाटकम १६ पृथूपाख्यान।

इसमे से अधिकाश नाटक इष्ट देवी के सम्मानार्थ लिखे गये। इनमें से कुछ नाटक बंगला मिश्रित हैं। उदाहरणार्थ कृष्णकैलासयात्रोपाख्यान, रामायण तथा रामचरित मुख्य बगला नाटक हैं।

'माधवानल कामकदला' तथा 'विद्या-विलाप' नाटको की कथावस्तु मे बहुत कुछ सादृश्य है। 'विद्या-विलाप' की कथा ऊपर दी जा चुकी है। 'माधवानल कामकदला' की कथा कुमार गगानन्द सिंह ने इस प्रकार दिया है।

"पुष्पावती नगरी के राजा गोविंदचन्द्र के यहां माधवानल नाम का एक ब्राह्मण नौकरी करता था। वह अत्यन्त सुन्दर, संगीतकला प्रवीण तथा सर्वप्रिय था। उससे दरबार के लोग ईर्ष्या करने लगे और उन्होंने राजा से उसके निष्कासन की प्रार्थना की। राजा ने प्रतिष्ठा के साथ उसे नगर से विदा किया। वहां से माधवानल कामावती नगरी में गया। जब उसे राजप्रसाद के सिंह द्वार पर वाद्य एवं संगीत की ध्वनि सुनाई पड़ी। उस समय कामकदला नाच रही थी। माधवानल ने कहा "यहां के वाद्य यंत्रों के बजानेवाले अनाड़ी हैं। मृदंगी तो अपने दाहिने हाथ के अंगूठे के अभाव मे ठीक से मृदंग बजा भी नहीं पाता।" द्वारपाल ने माधवानल की यह बात राजा से कही। राजा को आश्चर्य हुआ और जब उसने निरीक्षण किया तो माधवानल की बातें सत्य निकलीं। राजा ने तुरंत उसे बुलाया और उसका सत्कार किया। नाच चल रहा था और दर्शक-गण मंत्रमुग्ध थे। इसी अवसर पर कामकन्दला के छाती पर एक बर्रे बैठ गई। कामकन्दला ने अपनी श्वासों से उसे बड़ी चतुरता से उड़ा दिया। माधवानल के अतिरिक्त उसे कोई न समझ सका। वह कामकन्दला की चतुराई से अत्यन्त प्रसन्न हुआ और राजा की ओर से उसे जो भी उपहार मिला था, उसने कामकन्दला को दे डाला। ब्राह्मण के इस कार्य से राजा ने अपना अपमान समझा और उसने माधवानल को अपने राज्य से निकाल दिया। किन्तु

कामकंदला उससे अत्यधिक प्रसन्न थी। अत: उसने उसे कुछ दिन तो अपने घर में बन्द रक्खा और जब दोनों पृथक्‌ हुए तो उन्होंने एक दूसरे को जीवन भर अपने पारस्परिक प्रेम को दृढ़ रखने की शपथ ली। कुछ दिनों तक माधवानल इधर उधर भटकता फिरा। इसी अवसर पर उसे एक व्यक्ति मिला जो उज्जैन से राजा विक्रमादित्य की समस्या लेकर कामावती जा रहा था। माधवानल ने उस समस्या का समाधान किया और इस प्रकार वह उज्जैन पहुँच गया। वहां से उसने कामकन्दला को एक प्रेम पत्र भेजा जिसका उसे उचित उत्तर भी मिला। इस पत्र को पढ़कर विरह संतप्त माधवानल को बड़ा दु'ख हुआ। वह महाकाल के मदिर मे चला गया और रात्रि भर वहीं रहा। अपने हृदय को शात करने के लिये उसने एक कागज पर दो गीत लिखे। इन गीतों में उसके भावपूर्ण रूप व्यक्त थे। दूसरे दिन राजा विक्रमादित्य जब पूजन को गया तो उसे दो गीत मिले। वह इन गीतों के लेखक का पता लगाने लगा किन्तु पता न चला। दूसरे दिन भी उसे लिखे हुए गीत मिले किन्तु इस बार वह लेखक को ढूढ निकालने में सफल हुआ। उसकी प्रेम-परीक्षा करने के लिये विक्रमादित्य ने माधवानल से कहा कि कामकन्दला की मृत्यु हो गई है। यह सुनते ही माधवानल की मृत्यु हो गई। इसके पश्चात् राजा गुप्त रूप से कामकन्दला के पास पहुँचा और उससे माधवानल की मृत्यु की कथा कही। यह सुनते ही

उसकी भी मृत्यु हो गई। अब राजा की समझ में ये बातें आईं और उसने अपने वैताल की सहायता से उन दोनों को पुनः जिला दिया और इस प्रकार दोनों प्रेमी एक दूसरे से मिल गये।"

'विद्या-विलाप' की ही तरह 'माधवानल-कामकन्दला' की कथा भी अत्यधिक प्रसिद्ध है। नेपाल, मिथिला तथा बंगाल में इसकी कहानी प्रचलित है। संस्कृत तथा हिन्दी नाटकों में भी इसका उपयोग किया गया है। इस नाटक का कुछ अंश नीचे दिया जाता है :

"कामंद्रोक्ति—दण्डक ॥

वस्त्रमदिर, मा

वराढि रु ॥

देखह वन सम गेह।

मोहि न तेजह पहु कय अतिनेह ॥

जो निजु गुन मोर न हतदेह ॥

सुनिय विनति सव ॥

विहि देल दारुण,

खेपह नखपल जनि हिय पिय नहिं।

वेदन वूझिय निय पर एक खेह ॥

भनिव श्रीरणजीत जेह।

जिवधरम ओर कजेह करु सेह।

माधवोक्ति—दण्डक ॥

नरपति मा ॥

महेंठी ॥

तुअ भग जञो नृप कोय होय यहु
तज्यो भय जाइवे दूर ।
होय नहि तेजि जन विहि अतिकूर ।
शिव ॥ शिव ॥
धनि हे काहि कहु भय तुअ नूरे ॥
कमजिनी 'जनि जल जिवश्रो जेतल पल ।
कि कय खपव नहिं फल ॥
तुअ रस सुमविअ तेह होअ फूर ।
सने गुणिभनयि श्री रणजिव शूर ॥
अपन सर्भादिय विहिश्रो न पूर ॥

———○———

काठमांडू में लिखित नाटक

काठमांडू दरबार की स्थापना के साथ यक्षमल (१४७४) के कनिष्ट पुत्र अमरमल्ल ने नेपाल में सात प्रकार के नृत्य तथा अन्य कलाओं को प्रचलित किया। उसके पौत्र नरेन्द्रमल्ल(१५५१) और उसके उत्तराधिकारी महेन्द्रमल्ल (१५५६) तथा सदाशिव मल्ल (१५७५, ७६) ने नाटक रचना को प्रोत्साहन नहीं दिया। सदाशिवमल्ल के छोटे पुत्र का नाम था हरिहर सिंह देवमल्ल। उसके शासन काल में राज्य की दो शाखाए हो गई।

१. कांतिपुर अथवा काठमांडू शाखा के राज्य :

काठमांडू शाखा के संस्थापक लक्ष्मी नरसिंह मल्ल थे। उनके उत्तराधिकारी प्रतापमल्ल देव (१६३९—८९) एक प्रसिद्ध राजा थ। उन्होंने ललितपुर शाखा के अपने प्रतिद्वन्दी सिद्धनरसिंह मल्ल को हराया। उनकी दो रानियाँ थीं। एक का नाम रूपवती तथा दूसरी का नाम राजमती था। ये दोनों मिथिला की थीं। राजा ने मिथिला से अनेक पंडितों एवं विद्वानों को आमंत्रित किया। वंशमणि झा इसके दरबारी

कवि थे। वे भारद्वाज गोत्री रामचन्द्र झा के सुपुत्र थे। उन्होंने संगीत संबंधी अनेक ग्रन्थों की और दो मैथिली नाटकों की भी रचना की थी—१ 'गीतदिगम्बर' (१६५५) इसको एक हस्तलिखित प्रति नेपाल दरबार के पुस्तकालय में सुरक्षित है। २ 'मुदितमदालसा' इसकी हस्तलिखित प्रति राजगुरु स्व० पं० हेमराज शर्मा के पुस्तकालय में सुरक्षित है।

गीतदिगम्बर नाटक राजा प्रतापमल्ल के महा तुला-दान के समय पर लिखा गया था। इसमें चार अंक हैं। वे क्रमशः इस प्रकार हैं:—प्रथम अंक मुदिर महेश, द्वितीय अंक मानिनी-मानभंग, तृतीय अंक विरक्त विरूपाक्ष, चतुर्थ अंक सकाम-कामेश्वर।

इसमें शिवपार्वती की प्रचलित कथा का वर्णन है। शिव विषयक स्तुति अति सुन्दर है। आरंभ की एक स्तुति इस प्रकार है :

"आध मौलिमडन फुल माले,
आध तरगित सुरसरि धारे।
आध अञ्जिक तिलक नव इन्दु,
आध सोहावओ सिन्दुर बिन्दु।
कोमल विकट दुहु चारी,
अपुरुब नाच करथि तिपुरारी।
एक देह अधपुरुष दारा,
तेतिस कोटि देव देखनहारा।

सुकवि वशमणि सुर गावे,
सेकवि देव हर की नहिं पावे।"

नीचे का पद भी गजब का है :

"करह उनत हसि मुख अरविन्दा रे।
सरि मण्डगओ गगन दुइ चदा रे।
विधुक वेधरण हेरह मधु निसा रे।
कुवलय पांति फुलओ दस दिसा रे।
सरसनि सनिहा रिवो खिन नह (?) विछुवानि रे।
वरिसह मिघा मधुसानि रे।
रहलि विभावरि रस अवसान रे।
तेजह अकारण मरदन मान रे।
सुकवि वंशमणि एहु रस गाव रे।
अहन यनचन (याचन ?) काहि नहि भाव रे।"

प्रतापमल्ल के वाद महीन्द्र या भूपतीन्द्रमल्ल (१६७६—६४) सिंहासनारूढ़ हुए जिनके शासन काल में नलचरित् नाटक (१६८२) लिखा गया। डा० प्रवोवचन्द्र वागची ने इससे एक उदाहरण दिया है :

"तेरो वदन मानौ शशधर,
मेरो नयन चकोरा।
देखत मोहए अधिक सोहए,
कहहु वचन मेरा।

देखिते सुदर चपल लोचन,
काजर शोभा री।
मनो पकज भमर सोहत,
पवन से लघुचारी।
पार्थिवेंद्र सुत नृप 'भूपालेंद्र' रुहव,
एहो विचारी।
उचित समय मिलहुँ नागरि,
पति से मति समारी।"

उसके उत्तराधिकारी श्री भास्करामल्ल देव (१६६४-१७०२) ने मैथिली की उन्नति के लिये कुछ भी प्रयत्न नहीं किया। परन्तु उसके पौत्र जगज्जयमल्ल (१७०२—३२) ने मैथिली भाषा की उन्नति के लिये काफी सहायता की। उसके समय में सस्कृत के 'प्रबोधचन्द्रोदय' के आधार पर 'अभिनव प्रबोध चन्द्रोदय' नाटक लिखा गया। इसकी भाषा बगला मिश्रित है। इस शाखा के अंतिम राजा जयप्रकाशमल्ल थे जिन्होंने ३६ वर्षों तक (१७३६—७८) तक शासन किया।

२. ललितपुर या पाटन के राज्य :

इस शाखा की स्थापना हरिहरसिंह देव के कनिष्ट भ्राता ने की थी। मैथिली भाषा की उन्नति की दृष्टि से यह शाखा अत्यन्त महत्वपूर्ण है। हरिसिंहमल्ल का पुत्र सिद्धनरसिंह देव (१६२०—६७) एक प्रसिद्ध राजा था। उसके शासन काल

१६५१ में 'हरिश्चन्द्र नृत्यम्' नाटक की रचना हुई। इस नाटक का आधार 'चंडकौशिक' नाटक है। इसकी भाषा में कहीं-कहीं हिन्दी तथा बंगला का सम्मिश्रण है। इसमें सत्यवादी हरिश्चन्द्र की कथा है। 'चडकौशिक' के आधार पर ही भारतेंदु बाबू हरिश्चन्द्र ने 'सत्यहरिश्चन्द्र' नाटक की रचना की थी। नीचे इस नाटक से उद्धरण दिया जाता है। राजा हरिश्चन्द्र की पत्नी अपने मृत पुत्र रोहिताश्व को लेकर श्मशान पर जाती है। पहले तो राजा उसे नहीं पहचानते किन्तु अन्त में दोनों को पहचान लेते हैं। उसी दृश्य का वर्णन किया जाता है·

राजा अहे चोरिनि सुन ॥

कतयक हरिचंद्र के तुअ जाति। कांह गले अछल हमर किसान्।

रानी राय हरिचद् वेचिय हम गेर।

दुन संतान् दुख दय गेर ऐहि वेतवा के कय आस।

अहे महापुरुष हमी राजा

हरिश्चन्द्रेर स्त्री मएनावती अछि। हमार अभाग्यते परेर दासिनी हैरो अग्निसंस्कार करिवार पुत्र निया अमी अग्नि अग्निते जायवो।

॥ रानी जाव ॥

राजा—हरि ३ दैव (वे) हमा के कतेक वियसी दिशे हम जे अंडारेर दास है रो, एहि हमार पुत्र रोहितास अछि,

मनावती ते अमाके ना चिन्हिह्हो। हाय ३, अमी करब ने वुमार मुख दर्शन हैवे हरि २। जाति चोब॥ रोहिदास ऐसेन करम मोरा · ·· हहि ३ हमार एतेक विपत्ति हैरो मदनाव तो ते अमीना चिन्हिरो हरि ३॥

इस नाटक के अंत मे राजा सद्धनरसिंह देव को आशिर्वाद दिया गया है।

सिद्धनरसिंहदेव के पश्चात् श्री निवासमल्ल (१६५७) सिंहासनारूढ़ हुए। वे स्वयं कवि थे। उनके समय का केवल एक नाटक 'ललित कुवलयाश्व' का पता चला है। उनके प्रपौत्र विष्णुसिंहमल्ल (१७३७) ने 'उषा हरण' नाटक अथवा 'कृष्ण चरित' लिखा है। इसकी हस्तलिखित प्रति नेपाल के राजगुरु के पुस्तकालय में सुरक्षित है।

बानिकपुर : बनिया अथवा बनपट :

इस शाखा के सस्थापक यक्षमल्ल के द्वितीय पुत्र जयरणमल्ल थे। जयरणमल्ल ने लगभग २१ वर्षों तक शासन किया और अपने दरबार मे मैथिल ब्राह्मणों को स्थान दिया। यह शाखा केवल १०० वर्ष तक ही चला। इस युग के अनन्तर केवल एक ही मैथिली लेखक जयरामदत्त का पता चला है, जिन्होंने १४९६ में 'पांडव विजय' अथवा 'सभा पर्व' नाटक की रचना की थी।

उपसंहार :

सन् १६१८ से १७७५ तक के बीच में नेपाल में पृथ्वी नारायण साह ने गोरखा राज्य की स्थापना की थी। उसके साथ ही साथ गोरखाली भाषा का सूत्रपात हुआ। इस प्रकार (१७६८) से मैथिली की नेपाल में अवनति होने लगी। एक बात और थी। वह यह कि यह युग अशांति और विप्लव का था। ऐसी अवस्था में साहित्य-रचना संभव न थी।

इस युग के नाटकों पर तीन प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टि-गोचर होते हैं। प्रथम इन नाटको की रचना सस्कृत नाटकों के आधार पर हुई है, द्वितीय यह कि यह नाटक जन-साधारण को लक्ष्य करके लिखे गये। जिससे जनता को उनसे प्रेरणा मिली। तृतीय यह कि मिथिला के संगीतज्ञों ने इन नाटकों को पूर्ण रूप से प्रभावित किया।

मिथिला पर मुसलमानों का आधिपत्य हो जाने के कारण मैथिल साहित्यिकों एव लेखकों को नेपाल में साहित्य रचना के लिये शातिपूर्ण वातावरण मिला। यही कारण है कि वहां अनेक नाटकों की रचना हुई। बहुत संभव है कि अनुसंधानों से नेपाल में इस संबध में सामग्री मिले।

——:०:——

मिथिला का कीर्तनियां नाटक

ओइनिवार वंश के अन्त के पश्चात् मैथिली साहित्य का केन्द्र नेपाल हो गया था। इधर मिथिला में भी नाटक होते थे। इसमे कोर्तनिया नाटक सर्वप्रसिद्ध है। कुछ लोगों के अनुसार इस प्रकार के नाटको के प्रवर्तक उमापति उपाध्याय थे। वे कृष्ण की मूर्ति के संमुख नाचते तथा गाते थे। जो भी हो, मैथिली कीर्तनियां नाटकों पर बंगला के 'यात्रा' तथा आसाम प्रात के 'कीर्तन' नाटको के प्रभाव का अनुमान किया जा सकता है।

कीर्तनियां नाटक रात्रि में होते थे। रंगमंच के रूप में एक ऊंचा चबूतरा होता था। नांदी पाठ के उपरांत सूत्रधार का प्रवेश होता था। सूत्रधार को मैथिलो में नायक कहते थे। वह जामा, नीमा तथा पैजामा पहनकर, चादर ओढ़कर, सिर पर मैथिली साठा पगड़ी रखकर तथा खड़ाऊ पहनकर नांदी पाठ के पश्चात् 'अलमिति विस्तरेण' कहता हुआ रंगमंच पर आता था। उसके साथ ही उसकी पत्नी नटी भी रहती थी

और वे नाटक के लेखक एवं अवसर आदि का परिचय समवेत जनता को देते थे।

कीर्तनियां नाटक में नायक तथा नायिका के अतिरिक्त दो तीन सखियां, नारद तथा विदूषक भी रहते थे। वार्तालाप में संस्कृत और कभी-कभी प्राकृत का भी प्रयोग होता था। किंतु पदों एवं वार्तालाप में मैथिली का ही प्रयोग होता था। इन नाटकों में गद्य का प्रयोग बहुत कम होता था। विविध दृश्यों के प्रदर्शन करते समय गीतों में उनका वर्णन कर दिया जाता था। इन नाटकों में हस्तलिखित प्रतियां भी होती थीं जिन्हे पात्र रट लिया करते थे। मध्ययुग मे इन नाटकों के खेलने से पहले पात्र अभ्यास (रिहर्सल) करते थे अथवा नहीं, इसका प्रमाण नहीं है।

दर्शकों में बड़े से बड़े विद्वान् और निरक्षर भी होते थे। ये लोग मनोरंजन के लिये ही इन नाटकों में सम्मिलित होते थे। सगीत के अतिरिक्त विदूषक का पार्ट तथा नायिका का संगीत विशेष आकर्षक होता था। नीचे इन नाटकों के संबंध का विवरण उपस्थित किया जाता है :

विद्यापति'—सबसे प्राचीन नाटक विद्यापति कृत है। इसका नाम 'गोरक्ष विजय' नाटक है। यह महाराज शिवसिंह (१४१२—२८) के आदेश से लिखा गया था। इसमें भाषा तथा वार्तालाप तो संस्कृत में ही है, किंतु गीतों का सन्निवेश मैथिली में है।

शिवनन्दन ठाकुर ने विद्यापति ठाकुर द्वारा लिखित 'मणिमंजरी' नाटिका का उल्लेख किया है। किन्तु इसमें मैथिली का अभाव है। ग्रियर्सन के अनुसार विद्यापति ने 'पारिजात हरण' एवं 'रुक्मिणी हरण' की भी रचना की थी, किन्तु न तो इसकी कोई प्रति उपलब्ध है और न इस संबध में कुछ ज्ञात ही है।

गोविंद.—'नल चरित' नाटक के लेखक गोविंद कंसनारायण के दरबारी गोविंद ठाकुर तथा सुन्दर ठाकुर के समकालीन गोविंददास झा के अतिरिक्त व्यक्ति हैं। उन्होंने अपनी वंशावली दी है जो कि इन लोगों से सर्वथा भिन्न है। वे तीन भाई थे, जिनके नाम महादेव, वासुदेव तथा गोपाल थे। इन्होंने अपनो पूरी वशावली दी है। और यह पंजी से भी मिल जाती है। वहुत संभव है कि गोविद 'तत्त्वनिर्णय तंत्र' ग्रन्थ के लेखक महामहोपाध्याय गोविंद ही हैं।

इनके नाटक की कथावस्तु नल के वनवास की कथा है। पात्रों के वार्तालाप की भाषा सस्कृत और प्राकृत है। किंतु गीत मैथिली के हैं। उदाहरणस्वरूप मंत्री के आगमन की सूचना निम्न लिखित रूप मे मिलती है :

"भेल सुचरित मंत्रिवर परवेस।
अनुखन जसु सन धरम उद्देस॥"

जब नल दमयन्ती को छोड़कर चले जाते हैं। तो वह इस प्रकार विलाप करती है :

"अपद सकल संपद पहु हारल न मानल कोनहु निषेधे।
परिहरि परिजन गमन काल वन दारुण देव विरोधे॥
यदि न मिलब यहु दहन पैसब मोहु' पिआ बिनु केसनि नारी।
'गोविंद' कवि मन बुझ मधुसूदन सकल कहओ अवधारी॥"

अपने जुआ खेलने पर नल निम्नलिखित गीत में पश्चाताप करते हैं:—

"हमे जुआरी हमे जुआरी
जगतविदित हमे जुआरी रे।
हमरि झोरी हमर पास
धनिक देखि न आव निरास।
जत अरजथि जीवक सेवें।
तत गमावथि एक निमेषें।
ठक्फ वेटी हमर सारि।
दुअओ धनिक मोख दुआरि।
गोविंद मन नरपति देखि
फारए लागल कोण लेखि।'

नाटक के अन्त में नल और दमयन्ती घर लौटते हैं। इस दृश्य का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है:

"आयल नैषध वसुधा नाथ,
चदन वदन दमयन्ती साथ।
मक वलय माल कुंडल हार,
जनिभुव ने सुरपति अवतार।

नागरि जन मन मदन समान,
जा सम भेज न होएत आन।
पुरि परिजन जनपद जुवराज,
भौंएत किंकर तन राज।
धरम रूप धरि धरणी पाए,
नैपध नाम धराओल आए।
जसु दरसन जनमत आनद,
कुमुद विपिन जनु पुनिमक चद।
भन 'गोविंद' उदुनन्दन दास,
कमलापवि परिपुरथु आस।"

रामदास:—इन्होंने 'आनन्द विजय' नाटिका की रचना की थी। इस नाटिका की कथावस्तु चार अंकों में विभक्त है, जिसमे राधा और कृष्ण की प्रेम तथा विरह सवंधी लीलाओं का वर्णन है। इस नाटक के दो संस्करण हो चुके हैं। एक 'राजप्रेस' दरभंगा से और दूसरा 'वैशाली प्रेस' से। दूसरे संस्करण मे उतना ही अश है, जिनका उपयोग नाटक खेलते समय किया जाता है।

देवानद—इनका समय १७वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध एवं १८वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है। इनके 'उपा हरण' की एक हस्तलिखित प्रति उपलब्ध हुई है। इसके कुछ पृष्ठ नष्ट हो चुके हैं।

'उषा हरण' की कथा से सभी परिचित हैं। इसके कतिपय गीत अत्यन्त सुन्दर हैं। उदाहरणस्वरूप छठवें अंक में जब अनिरुद्ध नागपाश से बँध जाता है, तब उषा विलाप करती है —

"अनेक यतन सग पाओल रे,
जन्हि पुरल अभिमान।
से पहु विधि दोवें दुरि रहल रे,
पांतर परल परान।
विफल मोर जइवन रे,
हिमकर निचुव अंगार।

मुरुछि परिम सुकसुम पारसिकर रे,
विपधर सन भेलहार।
धानन विन्दु तन अनल जनि रे,
तेजल सकल सिंगार।
प्रलय करय सखि सबे यामिनी रे,
मेनसि जयम मोहिं मार।
तनों जिव हम पय राखव रे,
जओ देखयतन्हि जाए।
आनंद 'देवानंद' कवि गावय रे,
विरह सगति पय जाए।"

उमापति उपाध्याय—उपाध्यायजी मध्ययुग में कीर्तनियां नाटककारों में सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। किन्तु इनका समय

कथावस्तु 'रुक्मिणी हरण' की कथा है। कीर्तनियाँ नाटककारों में रमापति का स्थान बहुत ऊचा है।

लाल कवि:—लाल कवि ने 'गौरी स्वयंबर' नाटक की रचना की है। किन्तु इसमें इन्होंने कुछ भी नहीं कहा है। परंपरा से ही ये महाराज नरेंद्रसिह (१७४७—६१) के दरबारी नाटककार माने जाते हैं। एक दूसरे लाल कवि का भी पता चला है। इन्होंने महाराज नरेंद्रसिंह (१७४४—६१) की विजय पर कतिपय सुन्दर पदों की रचना की थी। यह निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता कि ये दोनों एक ही थे। यह आश्चर्य की बात है कि लाल कवि ने भणिताओं मे कहीं भी किसी भी राजा के नाम का उल्लेख नहीं किया है। ये शिव-भक्त थे। बहुत संभव है कि आत्मपरितोष के लिए 'गौरी स्वयबर' नाटक की रचना की हो। यह नाटक अकों में विभक्त नहीं है। यह एकाकी नाटक की भाँति है और इसमें शिव से गौरी के विवाह का वर्णन है। बगाल के 'यात्रा' तथा आसाम प्रांत के 'अंकिया' नाट्य केवल कृष्ण सबधी हैं। किन्तु मिथिला के 'कीर्तनियाँ' नाटक केवल कृष्ण-चरित तक ही सीमित नहीं रहा।

यह नाटक गौरी स्तुति से प्रारंभ होता है। इसके पश्चात् सूत्रधार नाटक के नाम तथा स्थान एव उद्देश्य आदि की सूचना देता हैं। पुन. नाटक की पृष्ठभूमि मे कामदेव का आगमन होता है। शिव अपने तृतीय नेत्र से उसे भस्म

कर देते हैं। इसमें रति निम्नलिखित रूप से विलाप करती है :

"हे हर कोन हरल मोर नाह।
अछल अभेद भेद नहीं भरमहं से नहि मन अवगाह।
पल बिसलेख पहर सओ मानिअ कोन परि होयत निवाह।
शोक कलाप दाह दह मानस डर उपजावए धाह।
विरहक अवधि अबुह पबल छीअ चहु दिश लागु अथाह।
मानक आधि वेआधि धाधि षरू, रंग रभस गेल दूर।
विहि भेल मोर कौन निरदय मोर हरलन्हि सिरक सिंदूर।
कुसुमक बान जहांन जकरवस सब गुन आगर कन्त।
से मोर साथ हाथ धए लाओल की काम वन्धु वसन्त।
सुकवि लाल कह धैरज धय रहु हरिसुत होएत अनंग।
ओ मनमथ तोहि रति पलटि पुनु होएतनें विधि सग।"

पार्वती पतिरूप में शिव को प्राप्त करने के लिये कठिन तपस्या प्रारंभ करती हैं। शिव वेष बदलकर पार्वती के सामने जाते हैं और अपनी निन्दा करके पार्वती को तप से विरत करना चाहते हैं। वे पार्वती से कहते हैं :

"जटिल भेषें देल परवेश, भस्म भूसित कपिल केश।
खालक वसन कय जेल काछ, आठहु आंग वान्हि रुद्राछ।
भांगक झोरा कांख वोकान, मांगथि फिरि फिरि भीख दोकान।
कान्ह विराजित उपवीत शेश, काहु न वुझि पर शीव विशेप।
सुकवि चतुर लाल गोचर गौरिहिं गमय आएलाह हर।"

- हर गौरी विवाह का बड़ा सुन्दर चित्रण नाटककार ने निम्नलिखित पदों में किया है।

गौरीशकर मंडप गेल, वड़ कठिन पुरहित पर्ा भेल।
वाप पितामह नाम नहिं जान, कौन परि होयत कन्यादान।
विनू नाम वरहिक कहि देल, ते विधि गोत्र उच्चारण भेल।
पुरहित कयलहिं अपन छुटनि, महाहरषमय भेल शूलपानि।
सुकवि लाल एहो अचरज भान, एहनो देखल विवाह विधान।

लाल कवि का 'शिवगौरी विवाह' का यह वर्णन पार्वती मंगल (तुलसीकृत) से बहुत कुछ मिलता जुलता है। पार्वती मंगल का आधार बहुत कुछ कलिदास का कुमारसभव है। बहुत संभव है कि लाल कवि ने भी अपने नाटक की सामग्री वहीं से प्राप्त की हो।

नदीपति.—इन कवियों की भाँति ही नन्दीपति का नाम भी मिथिला में काफी प्रसिद्ध है। यद्यपि नन्दीपति का निश्चित समय मालूम नहीं है, किन्तु उन्होंने अपने नाटक 'कृष्ण केलि माला' मे अपना जो वश परिचय दिया है। उससे यह विदित होता है कि वे महाराज माधोसिंह के (१७७६—१८०८) समसामयिक थे।

'श्रीकृष्ण केलि माला' नामक नाटक कृष्ण की प्रार्थना से प्रारभ होता है। यह गद्य मे हैं। कृष्ण-लीला ही वास्तव में इस नाटक की कथावस्तु है। इस नाटक मे कृष्ण की कथा उनके जन्म से ही दी गई है। किस प्रकार वासुदेव उन्हे नन्द-यशोदा के घर ले गये, कैसे उन्होंने पूतना राक्षसी का वध

किया। इन सभी घटनाओं का सुन्दर चित्रण कवि ने किया है। नीचे इस नाटक से एक पद उद्धृत किया गया है। इसमें राधा यशोदा से कृष्ण की निन्दा करते हुए कहती हैं।

यशोमति मोर उपरागे। हरिक चरित्र माइ बड़ मद लागे।
कोर सुतल तोर कान्हे। तें जनु जानह हरि छथि नान्हें।
एतहु करथि थनपाने। ओ तए कटे छथि तरुणक काने।
जाइत यमुना पथ आजे। बनसौं बाहर भेल यदुराजे।
आचर धयलन्हि मोरा। काल्हुक जनमल तोर किशोरा।
तखनुक तसु बेवहारे। से की कहब हम अपन कपारे।
पूछह सखी से आनी। नहि परमान होइत मोर यानी।
कहहु सखी गण मनलाई। जननि यशोमति नहि पतिआई।
नदीपति कवि कह अवधारी। कृष्ण चरित्र सभ छकित गोआरी।

नाटक के बीच-बीच में कृष्ण के ईश्वरत्व का भी परिचय दिया गया है। एक स्थान पर तो नन्द-कृष्ण की ईश्वर के रूप में प्रार्थना भी करते हैं। बीच-बीच में सस्कृत के श्लोक भी पाये जाते हैं।

गोकुलानंद:—इनके संबंध में बहुत कम ज्ञात है। इन्होंने अपने वंशादि तथा समय के बारे में कुछ भी नहीं लिखा है। नन्दीपति के बाद ही कदाचित् ये महाराज माधवसिंह (१७७६-१८०८) के शासन-काल में हुए थे।

इन्होंने 'मानचरित' नाटक की रचना की है। यह सात अंकों में समाप्त हुआ है किन्तु इसकी हस्तलिखित प्रति उपलब्ध

नहीं हुई। इस नाटक का प्रारंभ शक्ति की प्रार्थना से होता है। नीचे यह पद दिया जाता है :

"जय जय भारति भगवति देवि। छकने मुदित रहु पदसेवि।
चद्रधवल रुचि देह विकास। श्वेत कमल पर करहु निवास।
वीणारव रसिता वरनारि। सदव मगन गिरि राजकुमारि।
जन्म मरण नहिं तोहिं भवानी। त्रिदश दास तव त्रिगुणा जाचि।
अरुण अधर बंधूक समान। तीनि नयन विद्या वरदान।
गोकुल असुत सविनय मान। देहु परमपद दायक जान।"

इस नाटक के अत में व्रजभाषा का पद मिलता है। इसमें राधा-कृष्ण का मिलन दिखलाया गया है।

शिवदत्त:—इन्होंने भी अपने आश्रयदाता का उल्लेख नहीं किया। इनके दो नाटकों का उल्लेख मिलता है, जो इस प्रकार है :

१. पारिजात हरण, २. गौरी परिणय।

आपके 'पारिजात हरण' मे उमापति जैसे 'पारिजात हरण' की भॉति सुन्दरता और पूर्णता नहीं है। आपके नाटक के प्रारभ में सुत्रधार शक्ति की प्रार्थना करता है। इसके पश्चात नाटक प्रारभ होता है। इसकी कथावस्तु वही है जो उमापति के नाटक की।

दूसरा नाटक 'गौरी परिणय' में शिव-विवाह की कथा है। नाटक के अत में मगल-गीत भी है, जो निम्नप्रकार का है :

"सखि सब मगल गाओल। गौरि उचित वर पाओल।
शीवदत्त इही पद भान। तोरित पुरह शिवमोर मान।"

कर्ण जयानदः—ये कर्ण कायस्थ थे। इन्होंने अपने समय के वारे मे कुछ भी निर्देश नहीं किया है। किन्तु एक कविता से मालूम होता है कि ये भी महाराज माधवसिंह (१७७६—१८०८) के शासनकाल में हुए थे। इनका 'रुक्मांगद' नाटक प्रसिद्ध है। यह शकर की स्तुति से प्रारभ होता है, जो निम्नलिखित है

"मानसि चिकारन वारन कारण मनसिज कएल विदेह।
तेअओ देव अर्धनारि सुर एत वड़ गौरि सिनेह।
जय शकरा शकरा जोग भोग उपभोग परा।
आध मौलि जटाजूट विकट अति आधचिकुर अभिरामे।
आधामालसिदुर विन्दु शोभित आध तिलक हिम धामे।
आधकलेवर भसम धवल वर आध अगर अगरागे।
आधा हृदयहार मुक्तावलि आध विराजित लागे।
पटर ववर अम्बर सुललित असिअ विपम त्रिप पाने।
मगल सहित मनोरथ पूरथु करण जयानद भाने।"

श्रीकात गणकः—ये 'श्रीकृष्ण जन्म रहस्य' नाटक के रचयिता हैं। इन्होंने भी अपने समय के सबध में कुछ नहीं लिखा है। किन्तु आपने 'गौरी स्वयंवर के प्रणेता सुकवि लाल के दो पदों को उद्धृत किया है। लाल कवि महाराज

हसिह (१७४४—६१) के समसामयिक थे। अतएव श्रीकांत समय इसके बाद ही होगा। इनका समय अनुमानतः ी शताब्दी का मध्यभाग होगा। इन्होंने 'विष्णु जन्म स्य' के अनुकरण पर अपने नाटक का नामकरण किया ा।

'श्रीकृष्ण जन्म रहस्य' के मध्य में रात्रि तथा अन्य तुओं का वर्णन गद्य में हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि रत्नाकर के आधार पर यह वर्णन किया गया है।

नाटक के प्रारंभ मे नारद कस के दरबार मे आते हैं और ते हैं कि देवकी के पुत्र से कस का वध होगा।

"अद्‌बुद एक सुनल हम सुरपुर मन भेल परम विरामे।
देवकि तनय तह करा महीपति मन्द तोहर परिनामे।"

जब कृष्ण का जन्म होता है तो देवकी पुलकित हो उठती और कहती हैं

"हरि हेरि दुख दुरि गेला। पुलकित मानस भेला।"

वासुदेव कृष्ण को नन्द के घर ले जाते हैं और वहा उन्हे कर उनके घर से सद्य प्रसूत बालिका को ले आते हैं, से कस मार डालता है। नाटक की भाषा सरल किन्तु माली है।

कान्हारामदास—कान्हा कर्ण कायस्थ थे। इनके पिता नाम हलधर दास था। इन्होंने "गौरी स्वयम्बर" नाटक

की रचना की। इसमें हरगौरी विवाह की कथा है। अन्य कीर्तनियाँ नाटकों की भाँति इसमें किसी आश्रयदाता की चर्चा नहीं है। पार्वती-जन्म के बाद नारद उसकी माता से मिलते हैं और बताते हैं कि पार्वती का विवाह बौरा वर से होगा। इस पर उसकी माँ अपने पति से कहती है —

"कहिअ नाथ मुनिबात हम नहिं बूझल।
धरवर कुल परिवार निकल जओ पाविअ।
गौरी जोग वर होए विवाह कराविअ।
गौरी कुमारि रहति से वरु सहब।
बूढ़ भिखारि कुभेख से नहि करब।
प्राण पिआरि दुलारि उमापहु जानिअ।
तेहन करिअवर जोहि देखि सुख मानिअ।
ई कहि हेम पिआरि पिआ पद गहल।
सहित सिनेह गिरिशवचन तब कहल।
सोच बिसारि पिआरि राम सुमरु मन।
से करि हय कल्यान कन्हाराम मन।"

आगे चलकर पार्वती तपस्या करती है। इसी बीच तारकासुर पैदा होता है और वह देवताओं को कष्ट देने लगता है। तब इन्द्र कामदेव को शंकर का ध्यान भंग करने के लिये भेजते हैं। किन्तु शंकर उसे भस्म कर देते है। अतः इन्द्र शंकर के पास जाते हैं और तारकासुर द्वारा किये गये उत्पात का वर्णन करते हुए पार्वती से विवाह करने के लिये कहते हैं।

तव सप्तर्षियों को शंकर हिमालय के पास भेजते हैं और हिमालय भी इस वात को स्वीकार कर लेता है। फिर व्याह के पश्चात् तारकासुर-वध उनके पुत्र द्वारा होता है।

इस नाटक के कई पद्यों में शिव के विचित्र वेष का वर्णन मिलता है। एक पद नीचे उद्धृत किया जाता है :

"उमत उगन वर चलल विवाह कर हे। आगे माई॥
उमते स ग वरिआत एहन वर केकर हे।
नगन सवत रहला जन तन मह हे॥ आगे माई॥
भसम भरल भरि गात एहन वर केकर हे।
वृद्ध कुथुर वर साय धुथर भर हे॥ आगे माई॥
थर थर कपइव देह एहन वर केकर हे।
उमग गात चल नयन अनल वर हे॥ आगे माई॥
भूत प्रेत सिनेह एहन वर केकर हे।
त्रिशूल खटग धर असुभ भेख वर हे॥ आगे माई॥
देखइव परम भयान एहन वर केकर हे।
धिकाह सुंदर वर कयल कुरूप हर हे॥ आगे माई॥

शिव संबंधी यह नाटक औरों की अपेक्षा कहीं अच्छी है।

रत्नपाणि—इन्होंने संस्कृत में कर्मकांड तथा धर्मशास्त्र पर अनेक ग्रन्थों की रचना की है। पहले आप महाराज छत्रसिंह (१८०८—३६) के दरबार में रहते थे। आगे चलकर महाराज रुद्रसिंह (१८३९—५०) के दरबार में ही अपना अधिकांश

समय व्यतीत किया। 'उषा-हरण' नाटक महेश्वरसिंह (१८५०-६०) के आश्रय में लिखा। इस प्रकार आपका समय १८३३-५३ के बीच निर्धारित किया जा सकता है। यह बीसवीं शताब्दी के मिथिला के प्रसिद्ध नैयायिक धर्मदत्त झा उर्फ बचा झा के पितामह थे।

आपका 'उषा-हरण' नाटक चार अंकों मे विभक्त है। उषा और अनिरुद्ध की कथा अत्यन्त प्रसिद्ध है। नाटक के चौथे अंक में जब कृष्ण सब लोगों के साथ द्वारिका लौट आते हैं तो सभी लोग प्रसन्नतापूर्वक उनका स्वागत करते हैं। इसका वर्णन कवि ने निम्नलिखित ढंग से किया है।

"कर्णां कथि सुनल सब लोग। भेल कृतारथ बिसरल शोग।
तखन तैयारी नगरक भेल। दोसर द्वारिका जनि वनि गेल।
चंदन चर्चित जगमग धरणि। कुसुम विभूषित भए गेल धरणी॥
ततए पताका सभ दिश शोभ। देखइत सुरपतिकों होअ लोभ॥
कि कहब नगरक तखनुक चरित। विशकर्मा जनि सिरजल त्वरित।
सम दिश वाज सकल जन तखन। कृष्ण-कमल-मुख देखब कखन।
गजरथ वाजि पदाति अलेख। हरष वे आपति चलल अशेष॥"

इस नाटक में एक विशेष बात यह है कि एक 'तटस्थ' नाटक की सूचना श्रोताओं को देता है, जिससे नाटक मे असम्बद्धता निवारण होता है।

मानुनाथ झा—इनको भाना झा के नाम से भी पुकारते थे। इनके पिता का नाम महामहोपाध्याय दीनबंधु झा था,

जिन्हें पांडित्य के प्रतिफल एक ग्राम नेपाल राज्य से पुरस्कृत किया गया था। ये महाराज महेश्वरसिंह (१८५०—६०) के दरबार में रहते थे और ज्योतिषी थे। इन्हें अपना नाटक 'प्रभावती-हरण' उन्हीं के आश्रय में लिखा था। महाराज लक्ष्मीश्वर नारायणसिंह (१८८०—६८) मिथिला दरबार से आपका संबध था।

'प्रभावती-हरण' चार अंकों में लिखा गया है। यह रूपक् है। इसमें वज्रपुर के दानव की पुत्री प्रभावती का कृष्ण के पुत्र प्रद्युमन से विवाह का वर्णन है। इस नाटक के पद्य अत्यधिक सरस और विद्यापति के अनुकरण पर रचे गये हैं। नीचे कुछ पद दिये जाते हैं

"माधव सुनिअ बचन परमाने।
सुपुरुष जानि शरण अवलम्बन निज अभिमत दिअदानें।
"यदुपति बुझिअ विचारी। अभिनव विरह बेआकुलि नारी।
नलिन शयन नहिं भावे। तनि पथ हेरइत दिवस गमावे।"

"चलल शयन गृह मनमथ रे नागरि कर लागी।
जल बिजुलि जनि विचलल। निज निज तनुभागी।"

हर्षनाथ झा—इनका जन्म १८४७ ई० में हुआ था और ५१ वर्ष की अवस्था में ही ये दिवगत हो गये। १५ वर्ष की अवस्था में पढ़ना आरंभ किया था। १८६८ में गोपाल ठाकुर से पढ़कर आप काशी चले आये। काशी आकर राजाराम

शास्त्री, बाल शास्त्री तथा नरसिंह शास्त्री जैसे विद्वानों के तत्त्वावधान में अध्ययन किया। सन् १८७१ ई० मे काशी से मिथिला लौट आये और महाराज लक्ष्मीश्वरसिंह के दरबार में अपना शेष जीवन व्यतीत किया। ये व्याकरण, न्याय और साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान थे। शब्देन्दु-शेखर की कारकान्त टीका, परिभाषेन्दुशेखर की परिभाषार्थ दीपक टीका, मनोरमा की भावदीपक टीका, शब्दरत्न की शब्दरत्नदीपक टीका इनके महत्वपूर्ण संस्कृत ग्रन्थ हैं।

इन्होंने कई मैथिली ग्रन्थों की रचना की। 'उषाहरण' तथा 'माधवानंद' नाटकों की रचना मैथिली में की थी। 'राधा-कृष्ण मिलन लीला' नाटक भी लिखा था, जिसका अनुवाद ब्रजभाषा में किया गया। 'उषाहरण' की कथा प्रसिद्ध है। इसकी कथावस्तु वही है, जो रत्नपाणि के 'उषाहरण' की। यह पांच अंकों मे विभक्त है।

'मधवानंद' की रचना महाराज रुद्रसिंह के पौत्र बाबू एकरदेश्वर सिंह के आश्रय में हुई थी। इनमें कृष्णलीला का वर्णन है। इसका आधार श्रीमद्भागवत् की रास पचाध्यायी है। आपके नाटकों में कई गीत बहुत ही सुदर हैं। नीचे एक गीत दिया जाता है .

"कि कहब अपरुब नागरि रूपे।
नील वसनि धनि जलद वलित जनि थिर रहु तडित सरूपे।

राजित बदन मनोहर तापर कुतंल कुटिल विराजे।
राहु दशन हर तिमिर नुकाएल जन रजनीकर राजे।
चलति रोमावलि भुजगि नभिविलि लोचन खजन भासे।
कुच कंचन गिरि निकट नुकाइलि नासागरुड़ तरासे।
नूपुर पद्मरागपद शिंजित लज्जित नटन श्रुति कुञ्जे।
नयनभेद कह पुलक अगमट्ट कनक विशेषक पुञ्जे।
तसु तनुरचल मदन जनि रसमय की रसलम्पट वार्ने।
जप तप निरत सतत रस वंचित को वह रचन अजानें।
सुंदर अधरसुधरिमद, गजप कटि केहरि अभिमाने।
एकरदेश्चरसिंह बुझथिरस हर्षनाथ कवि भाने॥"

हर्षनाथ ने प्रकृति का वर्णन भी सुन्दर किया है आपने अपने 'उषाहरण' नाटक में शरद्-ऋतु को एक वणिक के रूप में चित्रित किया है :

"उसरल जगभरि शिशिर पसार, वसल सरस ऋतु पति बनिजार।
परसल सओदा मधुरस फूल, अभिनव सौरभ प्रेम अमूल।
तौलत दक्षिण पवन विचारि भमि भमि मांगत भ्रमर भिखारि।
पिक कुल करत दलालक काज, गाहक तरुणी तरुण समाज।
हसित वचन लोचन दय दाम, किनत सिनेह रतन सब ठाम।
रसमय हर्षनाथ कवि भान, नृप लक्ष्मीश्वरसिंह रस जान॥

हर्षनाथ झा एक प्रकार से अंतिम कीर्तनियाँ नाटककार हैं।

विश्वनाथ झा —हर्षनाथ झा के पश्चात् विश्वनाथ झा हुए। इन्होंने 'रामेश्वरचंद्रिका' नामक नाटक (१८६६–१६००) के बीच लिखा। ये नए युग के मैथिली विद्वानों में से थे, जिनमें से कृष्णजी (चेतनाथ झा), हर्षनाथ झा, चदा झा आदि प्रसिद्ध हैं। इनके नाटकों के पढने से यह स्पष्ट हो जाता है कि अब मैथिली कीर्तनियाँ नाटकों का अंत हो चुका है।

चंदा झा (१८८०—१९०७):—चंदा झा पर पूर्ण रूप से विचार आगे किया जायगा। आपके 'अहिल्या चरित' नाटक का कुछ अंश सन् १९१२ में प्रकाशित हुआ था। इसमें गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या के उद्धार की कथा है। जयदेव तथा विद्यापति के पदों को भी अपने इस नाटक में उद्धृत किया गया है।

बलदेव मिश्र.—इनका जन्म सन् १८८७ में हुआ। इन्होंने दो नाटकों की रचना की है (१) राजराजेश्वरी नाटक और (२) रमेशोदय नाटक। ये दोनों नाटक रामेश्वरसिंह (१८९८-१९२९) के आश्रय में लिखे गये थे।

राजराजेश्वरी नाटक नौ अंकों में समाप्त हुआ है। यह 'स्कन्द पुराण' के 'काशी खड' पर आधारित है। इसमें पार्वती की तपस्या, कुमार-जन्म और तारक वध की कथा है।

उपसहार.—मिथिला में अब कीर्तनियाँ नाटक का अन्त हो गया है और नए युग के आरंभ से अब दूसरे प्रकार के नाटकों की रचना होने लगी है जिसकी चर्चा अन्यत्र की जायगी। इन नाटकों में 'रुक्मिणी-हरण' 'उषा-हरण' एव 'हरगौरी-विवाह' का ही विशेष रूप से वर्णन है। इन नाटकों के गेय पदों को नाटककारों ने ही रचा है। किन्तु कभी-कभी उन्होंने अन्य कवियों को भी अपनी कृतियों में स्थान दिया है। इन नाटकों ने मैथिली भाषा तथा साहित्य को शक्तिप्रदान किया है।

——:०:——

असम-प्रांत के मैथिली नाटक

१५वी शताब्दी के अंत तक अहोम लोग काफी शक्तिमान हो चुके थे। उन्होंने मुसलमानों को हराकर देश में शाति की स्थापना की। इस बीच में जो मवर्ष हुआ, उसके फलस्वरूप असम-प्रांत में छोटे-छोटे राज्यों की स्थापना हुई, और विश्व-सिंह (१५१५ ई०) कूच या कोच जाति शक्तिमान वन गई थी। गद्दी पर बैठते ही विश्वसिंह ने अपनी राजधानी कूचविहार में स्थापित की थी और उसके बाद से ही मिथिला तक कूच बिहार में घनिष्ट संबंध स्थापित हो गया था।

विश्वसिंह के बाद १५४० में उसका पुत्र नारायण सिंहासनारूढ़ हुआ। उसके राजत्वकाल में साहित्य और सस्कृत की उन्नति हुई। प्राय इस युग के सभी कवि तथा पंडित इसके दरबार में गये। उसी समय शंकरदेव के तत्वावधान में असम-प्रात में वैष्णव धर्म का आदोलन चला। यह आन्दोलन ब्राह्मण तथा शाक्त दोनों का विरोधी था। वह कृष्णभक्ति को लेकर अग्रसर हुआ। इस प्रकार जनसाधारण

के लिये देशी भाषा में साहित्य रचना की आवश्यकता पड़ी। अत' १६वीं शताब्दी में मैथिली में असम-प्रांत में नाटक रचे जाने लगे। इन नाटकों के लिखनेवाले वैष्णव थे। बहुत संभव है कि नाटकों में विद्यापति के पदों एवं मैथिलों का प्रभाव पड़ा हो।

असम-प्रांत के प्रसिद्ध नाटककार

शकरदेव:—जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि शंकरदेव (१४४६—१५५८) असम-प्रात में वैष्णव धर्म के प्रवर्त्तक थे। आपने मैथिली में कई नाटकों की रचना की जिनमे से ६ नाटक उपलब्ध हैं। ये नाटक क्रमश इस प्रकार हैं.—(१) कालियदमन (२) राम विजय (सीता स्वयवर) (३) रुक्मणीहरण (४) केलि-गोपाल (५) पत्नी प्रसाद और (६) पारिजात हरण।

कालियदमन की रचना कवि ने अपने भाई रामराय के अनुरोध से की थी। इसकी कथावस्तु बगाली 'यात्रा' नाटकों में अत्यत प्रसिद्ध है। कृष्ण द्वारा काली-नाग-दमन की कथा भागवत की है। नीचे इस नाटक से एक उद्धरण दिया जाता है। इसमें नाग की पत्नियाँ कृष्ण से प्रार्थना कर रही है।

"सूत्र–तदनंतर नागवधू सवक परम सन्ताप पेखिये श्रीकृष्णक कृपा उपजल। नागनारी सवक संवोधि बोलल। आए कालिक भार्या नागिनी सव, सन्ताप छोरह। इहि बोलि डेब दिया नामि सर्पक फणहन्ते अन्तर हुआ रहल।

श्लोक—ततो पृच्छित. कालिय शनैं सम्प्राप्य चेतनाम्
तुतोय शिरसानत्वा मत्वा कृष्ण महेंश्वरम् ।

सूत्र—यमपुर पाइकालि कथंकथमपि प्राण बर्तल। महा पीड़ा पाइ फौकारत आपद औषधि पाई सर्प दर्प भेल। चित्त शांत हुआ आखि मेलि कृष्णक आगे पेखि बोलल। ओहि कोटि ब्रह्मान्तेश्वर नारायण जानि, त्राहि त्राहि स्वामी कृष्ण बोलि थिरे चरण परशिए प्रणाम कयल। पश्चात् जानु पारि-कारि योरि (जोरि) तुति (स्तुति) आरम्भल।

पयाद—जय जय जगत महेश्वर। ब्रह्मा ॰ याहेकिंकर।
जय भवतक भय हारी। नमो हरि चरण तोहारि।
तब पारे अतए साधि। मजि पापी अपराधी।"

'राम-विजय' नाटक का वस्तुत राम की विजय से कोई संबंध नहीं है। इसका यह नामकरण उपयुक्त नहीं प्रतीत होता। क्योंकि इसमें 'सीता-स्वयंवर' का ही प्रदर्शन किया गया है। यह शकरदेव के आश्रयदाता नारायण के भाई शुक्लध्वज उर्फ चिलराम के अनुरोध से लिखा गया है। जब राम धनुष उठाते हैं तो सीता के मन में जो भावना उठती है उसे प्रदर्शित करने के लिये इस नाटक से एक उद्धरण दिया जाता है.

"सूत्र—हे सामाजिक। येखन रामचद्र अजगव धनू धरल, सीता शकित भावे चिंतित भेलि।

सीता—हा हा हामार स्वामी परमसुकुमार नवीन वयस। व्रजाधिक कठिन महेशक धनु इहात गुण दिते स्वामी जानो

नहि पारय। हा हा पिता के दारुण कर्म्म कयलि। (ओहि चिन्ति पृथ्वीक कातर कय वोलल। (हे माता वसुमति तुहू थिर हुआ रहव। हे पिता अनन्त। तुहू भाल कए पृथ्वी धरव। हे शकर कुर्म्मराज, तुहू अनन्त पृथ्वीक सन्नद्धे धरव। तोरा सवक प्रसादे स्वामी यदि धनुत गुण दिते पारय, तव आमि अगति रगति हेव। ओहि वुलि सीता स्वामीक समुखि निरखि रहल।)"

'रुक्मिणी-हरण-नाटक' असम मे वहुत प्रसिद्ध है और साथ ही साथ सर्वजन मन भी। रुक्मिणी भीष्मक की पुत्री थी जो कुंडिन का राजा था। यह कुंडिन असम प्रात की जन परंपरा के अनुसार सदिया (असम प्रात) का ही दूसरा नाम है। इस प्रकार से रुक्मिणी को असम-प्रांत की राजकुमारी वताकर शंकरदेव ने वहा की जनता की अभिरुचि पर ही इसे लिखा है।

'केलि गोपाल' कृष्ण और गोपियों की रास-लीला का इसमें चित्रण है। इसका आधार श्रीमद्भागवत का दशमस्कन्ध है।

शंकरदेवकृत 'पारिजात-हरण' नाटक भी असम-प्रात में वहुत प्रसिद्ध है। इसकी कथा में भी कवि ने कुछ हेरफेर कर सुन्दर वनाने का प्रयास किया है। कामरूप के राजा को तारकासुर के उत्पीड़न से दुखी देखकर देवतागण कृष्ण से प्रागज्योतिष जाने की प्रार्थना करते हैं। कृष्ण अपने साथ सत्यभामा को भी ले जाते हैं।

'पत्नी प्रसाद्' नाटक में यज्ञ द्वारा मोक्ष प्राप्त करने की निस्सारिता प्रकट की गई है। इसकी कथावस्तु बडी विचित्र है। अपने पतियों के विरुद्ध कुछ ब्राह्मण स्त्रिया कृष्ण की भक्ति में लीन हो जाती हैं। इस नाटक का मुख्य उद्देश्य शक्ति की महिमा प्रदर्शित करता है। नीचे इस नाटक से एक उद्धरण दिया जाता है ·

"सूत्र—ऐंचन परकारे ब्राह्मणी सब श्रीकृष्ण देखिते चलल। सोहि समये ब्राह्मण सब येचे निषेधल, ता देखह। हे ब्राह्मणी सब, तोरा सबे कि देखल, कि शुनल? यज्ञ कार्य परिहरि गोपालक पाछू-पाछू कतिहो याब? हा हा तोरा सब भ्रन्ता भेक्ति। (परन्तु)———हरि भक्ति रखे आकुल हया तारा सवे शुये नहिं। सोहिं समये एक ब्राह्मण ब्राह्मणी गृह मध्ये आचय जानि द्वार वंद कए राखल। तदनंदर कृष्ण दरशन आशा भगे ब्राह्मणी कृष्ण चरण हृदय परिये येचे प्राण तेजल, ताहे देखह सुनह। निरन्तरे हरि बोल हरि।"

माधवदेव.—शकरदेव की गद्दी पर उनके प्रधान शिष्य माधवदेव (१४८६—१५९६) आसीन हुए। इन्होंने वैष्णव सिद्धान्त पर 'नामघोष' तथा 'भक्ति-रत्नावली' के अतिरिक्त कई नाटकों की रचना की। ये नाटक इस प्रकार हैं :

१. अर्जुन-भंजन, २. भोजन व्यवहार, ३ भूमि लेटोआ, ४. भूषण हेरोआ, ५. रसभूमर, ६ कोतोरा खेल, ७. ग्वाल पारा, ८. चोर धरा, ९. पिम्पर गुचुआ।

ये नाटक कृष्णलीलापरक हैं। दही चुराने पर कृष्ण को यशोदा ऊखल मे बांधती हैं। ऊखल में बधे कृष्ण मलयार्जुन वृक्षों के पास पहुँचते हैं। यही 'अर्जुन भंजन' का कथावस्तु है।

'चोरधरा' नाटक बहुत ही सुन्दर है। गोपियां श्रीकृष्ण पर माखन चुराने का अभियोग लगाती हैं। किन्तु चतुराई से कृष्ण उन्हीं पर यह दोष आरोपित कर देते हैं।

'भूमि लेटोआ' नाटक में कृष्ण के भूमि पर लोटने का वर्णन है। यशोदा कृष्ण को नवनीत (मक्खन) नहीं देती। इस कारण कृष्ण भूमि पर लोटने लगते हैं। इसका एक अंश नीचे दिया जाता है :

यशोदा—आहे बालक तुहो किनिमिते मारि लोटि कन्दन करह—

श्रीकृष्ण—आहे माई यशोदे, ओहि मांडक मध्ये नवलवनि खेवा चिलौं ताहेक कोनिया ठोल .....!

यशोदा—आहे पूत, तोहारि कानरे सकल लवन खावल। तुहू हामात रोष करिये। माटि लोटि केठन क्रन्दने करस। मोहि मालिक प्रतीक्त शरीर धूलधूसरित भेले।

आः अखने गोपाल सवे दधि आनव। ताहेक हामु सखिये नविन लवनु देवर। चिनि कर्पूर माखिये खारिर लाडू देववो, तुहू ताहेक आनन्दे भोजनकरवि। यदि हामार वचने सञ्जात नाहिं मानत तवे पराक्र गोपी साखी करह।

सूत्र—ओहि वेलि यशोदा कृष्णक कोले तत्काले स्तनपान कराइचे श्रीकृष्ण यशोदा का येचन भार परकाश कयल ता देखह।

गीत—राग श्याम—परिताल

यशोदा गोपाल को ले निये।

बयन भरि घन चुबन दिछे।

'भोजन व्यवहार' नाटक में एक विचित्र कथा है। कृष्ण गोप बधुओं के साथ भोजन करने बैठे हैं। इसी बीच ब्रह्मा उनकी गायों को चुरा ले जाते हैं।

'रास-झूमरा' में रासलोला के साथ रात्रि में राधिका कृष्ण की परमेश्वर रूप में स्तुति करती हैं। इसका एक अंश नीचे दिया जाता है।

'राधा'—हे परमेश्वर, तोहारि चरणकु आगुहासु। कर ये डि मागों। हामाक तोहो दान देहु। परम सुकोमल तोहारि चरण पल्लव, भुवन दुर्ल्लभ हाभार स्तनयुग लेयो व्याधि बाढ़त, ताहे ओहि चरणे दूर करत जानि तोहारि चरणक निज दासी भेलो।

गोपालदेव—माधवदेव के पश्चात् असम-प्रात में वैष्णव-धर्म के मुख्य संचालक गोपालदेव हुए। इन्होंने केवल एक नाटक 'जन्म यात्रा' का प्रणयन किया जिसकी रचना कृष्ण जन्म की कथा के आधार पर हुई है। नीचे इससे एक उद्धरण दिया जाता है :

सूत्र—सोहि समये देवता सब श्रीकृष्ण तुति (स्तुति) करिते आवल। ता देखह शुनह, निरन्तेर हरि वोल हरि वोल।

गीत—राग कानड़ा—परिताल

ध्रुव—भोर चतुरानन परम रगे

शंकर सुर मुनि गण सगे

सूत्र—देव सबे नमस्कार करिये कर पूरि (जोरि) तुति (स्तुति) करिते लागल, ता देखह शुनह।

देवता सब—हे परमेश्वर तोहा देवक परम देवता सनातन सर्व अन्तर्यामी।

रामचरन ठाकुर:—इन्होंने 'कंस वध' नाटक की रचना की है। इनके पिता का नाम रामदास ठाकुर था। इनके नाटक का उल्लेख हेमचन्द्र गोस्वामी ने असमियां हस्तलिखित प्रतियों की सूची में की है। इसमे कृष्ण-बलराम द्वारा कंस तथा चाहूर आदि के बध के पश्चात् वसुदेव देवकी को बंधन से मुक्त करने की कथा है।

कतिपय अन्य साधारण नाटककार:—शंकरदेव के एक अज्ञात शिष्य ने 'स्यमन्त हरण' नाटक की रचना की है। इसमें जाम्बवान् को हराकर स्यमन्तक मणि लेने तथा कृष्ण से जाम्बवन्ती के विवाह की कथा है।

ऐसे नाटकों की रचना बाद में भी होती रही। उदाहरण स्वरूप राजा प्रभक्तसिंह (१७४५—५१) के शासनकाल में 'श्रीकृष्ण प्रयाण' नामक नाटकम् की रचना हुई। इसमे विभिन्न पात्र तो संस्कृत में वार्तालाप करते हैं। किन्तु पद

असमियाँ तथा व्रजबूलि में लिखे गये हैं। इसी समय का एक नाटक 'कुमारहरण' भी उपलब्ध है।

इस युग में असमप्रात में और कई मैथिली नाटक लिखे गए, किन्तु वे अबतक उपलब्ध नहीं हैं।

असम प्रात के मैथिली नाटकों की विशेषता.—असम प्रांत के इतिहास तथा पुरातत्व विभाग की ओर से ऐसे १५ नाटकों का सयुक्त संस्करण प्रकाशित हुआ है, जिसमें आलोचनात्मक परिचय भी है। डा० बाणीकान्त काकाती ने अपने ग्रन्थ 'पुरनी असमियाँ साहित्य' तथा प्रोफेसर एस० के० भुइयां ने 'प्राचीन तथा अर्वाचीन असमियाँ साहित्य' में इस संबध में पूर्ण रूप से विचार किया है। श्री कालीराम मेधी तथा श्रीयुत वी० एन० डेका ने 'कामरूप अनुसंधान समिति की पत्रिका के अनेक अंकों में भी इस साहित्य पर पर्याप्त प्रकाश डाला है।

असम प्रांत के इन नाटकों का नाम 'अंकिया-नाट' है। इनकी विशेषता यह है कि इसमे केवल एक ही अक होता है। फिर भी अंकों में विभक्त संस्कृत नाटकों से ये सर्वथा भिन्न होते हैं। कदाचित् 'अकिया' शब्द सरकृत 'आंगिक' से उत्पन्न हुआ है।

इन नाटकों की उत्पत्ति 'काव्य पाठ' से हुई है। इस के पूर्व असम प्रात में 'ओजापाली माडली' पदों को गाती हुई घूमती थी। ओजा से कदाचित् मैथिली ओझा अथवा झा से

तात्पर्य है और पाली से मृदंगी। शंकरदेव ने इस परंपरा को 'अंकिया' नाटक का रूप दिया, जिसका प्रभाव जनसाधारण पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा।

इन नाटकों के रचयिता नाटककार की अपेक्षा कवि और संगीतज्ञ अधिक थे। वे उस युग के वैष्णव धर्म के प्रवर्त्तक थे। शंकरदेव तथा माधवदेव तो असम प्रांत के सर्व प्रसिद्ध चित्रकार तथा गायकों में से थे। यही कारण है कि इन नाटकों के पदों में रागों का भी उल्लेख मिलता है।

ये अधिकांश गद्य में ही हैं, किन्तु बीच बीच मे गीत तथा पदों का बाहुल्ल है। गीतों की भाषा असमियां तथा मैथिली है। किन्तु गद्य की भाषा प्रायः शुद्ध मैथिली है। इनमें कहीं-कहीं व्रजभाषा तथा असमियां का भी संमिश्रण है, अन्यथा नाटकों की भाषा शुद्ध मैथिली है।

इन नाटकों का आधार रामायण, महाभारत तथा श्रीमद्भागवत पुराण है। इनकी एक विशेषता यह भी है कि एक ही अंक में सफलता पूर्वक संक्षेप में नाटककार सभी बातों का समावेश कर देता है। इन नाटकों के प्रारंभ मे प्रायः मंगलाचरण संस्कृत में है और कतिपय नाटकों में 'नान्द्यन्ते सूत्रधारः' मिलता है। इसके पश्चात् सूत्रधार अपने मित्र (संगी) को बुलाते हुए आकाश की ओर देखकर कहता है कि— हे संगी के बाद्य सुनिये। इस पर संगी उत्तर देता है 'आहे देब दुन्दुभि बाजत' आदि।

आजकल इन नाटकों मे सूत्रधार और उसके संगीत के अतिरिक्त विदूषक को भी संमिलित कर लिया जाता है। पहले इन नाटकों में विदूषक के संबध में कुछ भी चर्चा नहीं है।

इन नाटकों की भाषा सरल एवं अलंकारहीन है। इसका कारण यह है कि ये कृष्ण-भक्ति के प्रचार के उद्देश्य से लिखे गये थे। आसाम में कृष्ण-भक्ति के दास्य भाव एव वात्सल्य भाव का ही प्रचार हुआ। शंकरदेव वस्तुतः दास्यभाव के उपासक थे। किन्तु उनके शिष्य माधवदेव को वात्सल्यभाव प्रिय था। बंगाल के वैष्णधर्म की भाँति असमप्रान्त मे पति-पत्नी अथवा नायक नायिका भाव का प्रचार नहीं हो पाया।

इन नाटकों का प्रभाव यह भी पड़ा कि अशिक्षित ग्रामीण जनता भी इनके अभिनय का रस ले सकती थी और सरलता-पूर्वक पौराणिक कथाओं से परिचय प्राप्त कर सकती थी। इस युग में जबकि ज्ञान-विज्ञान और साक्षरता का प्रचार बहुत कम था, इन नाटकों ने जनता के सांस्कृतिक स्वर एव उसकी धार्मिक भावना को ऊंचा उठाने में पूर्णरूपेण सहयोग प्रदान किया।

——:o:——

मध्ययुग का मैथिली गद्य

यह अन्यत्र दिखाया जा चुका है कि १४वीं शताब्दी में ही ज्योतिरीश्वर ने 'वर्णरत्नाकर' की रचना मैथिली गद्य में की थी। विद्यापति ने भी साहित्यिक गद्य का प्रयोग किया था, किन्तु इसके पश्चात् मैथिली साहित्य में गद्य का अभाव हो जाता है। हाँ, मैथिली नाटकों तथा प्राचीन कागजों पत्रों में मैथिली गद्य अवश्य मिलता है।

मिथिला में प्राचीन कागज-पत्र निम्नलिखित रूप में मिलते हैं:—१ गौरीवचाटिका, २. वहिखाता, ३. आजातपत्र, ४. इकरारपत्र, ५ जनौढ़ि, ६. निस्तारपत्र, ७. वृत्तिपत्र।

संस्कृत में लिखित फैसलों पर विचार करते हुए सर्वप्रथम महामहोपाध्याय पं० गंगानाथझा ने इस ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया। सबसे प्राचीन 'गौरीवचाटिका' सन् १६१५ ई० का है, जिसका उल्लेख महामहोपाध्याय पं० गंगानाथ झा ने किया है। इसमें एक दास की पुत्री को उसके विवाहित होने पर एक रुपया लेकर मुक्त किया गया है।

मिथिला के वहीखाता संबंधी पुराने कागजों में दासों के विक्रय के संबंध में कई लेख मिले हैं। उन लेखों से विदित होता है कि मालिक कुछ रुपया देकर नौकर रख लेते थे और इसके संबंध में लिखा पढ़ी हो जाती थी। इस प्रकार के लेख प्राय: सस्कृत में उपलब्ध हुए हैं।

आज्ञातपत्र से तात्पर्य मुक्ति पत्र से है। ऋण लेनेवाले को रुपया चुकाने पर इस पत्र द्वारा मुक्त किया जाता था। इस प्रकार के पुराने पत्र मैथिली में मिले हैं। १८वीं शताब्दी

के आरंभ में दासों का क्रय-विक्रय एक प्रकार से बन्द हो गया और धोबी कुम्भार आदि से इस बात का इकरार होने लगा कि वे मजूरी लेकर काम करेंगे। ऐसे इकरारनामों को इकरार-पत्र कहते हैं। नीचे इकरारनामे का उदाहरण दिया जाता है·

"लिखित वैजू पंडीत ओ योछी पंडीत ओ गिरधारी पंडीत और मगहू पंडीत एका पंडीत कुंम्हारेक श्री कपिलादत्त मिशर के प्रणाम आगाँ। हमरा सबहि एहां के अकरार लिखि ले अछि जे अखन जखन इन्दार टटार वा भगठाय तखन तखनत उडाइ भगठाइ छोडा दीअ एहांक ओतय कोनहु बातक उजूर न करी मजूरी न मागीअ अपने खुस बजाय से अंकरार-पत्र लिखि देल सन् १२२३ पूस बदि १० रोज मंगल—

सही बैजू पनीत

अस्य साक्ष्य श्री बठहार झा ओ श्री मैआ झा ओ श्रीबम्के झा।

जनौढ़ि ऐसे इकरारनामे को कहते हैं, जिससे कोई जन या मजदूर यह इकरार करता है कि वह अपने मालिक को छोड़-कर और किसी अन्य व्यक्ति के यहा मजूरी न करेगा। इसके लिये नियमित रूप से मालिक की ओर से मजूरी भी मिलेगी।

ऋण चुकाने पर धनी की ओर से प्रायः निस्तार-पत्र लिखा जाता था। इसके अतिरिक्त भी कई प्रकार के इकरारनामे होते थे।

वृत्तिपत्र या दानपत्र प्राय़ राजा महाराजाओं की ओर से ब्राह्मणों को दिए जाते थे। इसके द्वारा ब्रह्मोत्तर जमीन दी जाती थी। इसके अतिरिक्त और भी पंचनामे और पत्रादि मैथिली में मिलते हैं, जिसका उल्लेख मैथिली-साहित्य के अन्य इतिहास लेखकों ने किया है।

—:०:—

मैथिली साहित्य का आधुनिक युग

मैथिली साहित्य का आधुनिक युग

नव जागृति-काल

सन् १७६४ ई० में मिथिला प्रदेश पर अंग्रेजों का प्रभाव पड़ना शुरु हो गया। किन्तु प्रारंभ में यह प्रभाव बहुत सीमित और अस्पष्ट था, क्योंकि नैपाल की तराई में उपद्रव हुआ करते थे। १८०८ से १८३९ ई० में मिथिला के राजा छत्रसिंह थे। इनके काल में मिथिला पर अंग्रेजों का पंजा जम गया। १८६० ई० में मिथिला के राजा महेश्वर सिंह की मृत्यु हुई। उनके दो नाबालिग लड़के थे, जिनमें से बड़े लड़के का नाम लक्ष्मीश्वर सिंह था। मौका देखकर ब्रिटिश हुकूमत ने मिथला राज्य को कोर्ट आफ वार्डस् के अन्तर्गत कर लिया। इस प्रकार मिथिला पर ब्रिटिश हुकूमत का पूर्ण प्रभाव कायम हो गया। इस समय अंग्रेजी हुकूमत ने मिथिला में मैथिली भाषा और मैथिली लिपि की जगह सर्वत्र सरकारी कामों में उर्दू भाषा और फारसी लिपि का प्रयोग प्रारंभ कर दिया। उच्च वर्ग के लोगों में अंग्रेजी शिक्षा की रुचि पैदा हुई। १८८१ ई० में दरभंगा

में पहला स्कूल खोला गया। जब लक्ष्मीश्वरसिंह बालिग हुए और राज्य सम्हाला, तो उन्होंने उर्दू की जगह हिन्दी भाषा और फारसी की जगह नागरी लिपि का प्रचलन शुरू किया। लक्ष्मीश्वर सिंह और उनके छोटे भाई रामेश्वर सिंह ने मिथिला मे अंग्रेजी शिक्षा को प्रोत्साहन दिया। अंग्रेजी शिक्षा के संपर्क ने मिथिला में नव जागृति पैदा कर दिया। इस नव जागृति के काल मे मिथिला में मैथिली भाषा और साहित्य में भी नव-जीवन का संचार हुआ। पहले मिथिला में भी मैथिली सिर्फ बोल-चाल की भाषा मानी जाती थी—ज्ञान और साहित्य की भाषा संस्कृत थी। संस्कृत के पंडित भी साहित्य का अध्ययन हेय समझते थे। उनके अनुसार शास्त्रों में व्याकरण ज्योतिष, दर्शन आदि की गणना होती थी। साहित्य को वे केवल मनोरंजन की सामग्री मानते थे और यही कारण है कि संस्कृत के प्राचीन पंडितों का ध्यान पूर्णतः अपनी मातृभाषा की ओर बहुत बाद को गया। किन्तु इस काल मे मैथिली भाषा में साहित्य-निर्माण की प्रेरणा मैथिल जीवन में पैदा हो गई। इस नव-जागरण काल में प्रसिद्ध मैथिली कवि चंदा झा, रघुनन्दन दास, महामहोपाध्याय पं० गगानाथ झा, विंध्यनाथ झा और गणनाथ झा आदि विद्वानों ने साहित्य-रचना का कार्य प्रारंभ किया। फलत' नीति, दर्शन, इतिहास और साहित्य आदि क्षेत्रों में भी मैथिली भाषा का प्रयोग होने लगा। शिक्षा के क्षेत्र में भी काफी जागृति हुई। १८६५ ई०

तक दरभंगा जिले में ५ अंग्रेजी हाई स्कूल, ४ मिडिल इं० स्कूल, ६ वर्नाक्यूलर और ५०७ प्राइमरी स्कूल खुले। इसी प्रकार मुजफ्फरपुर, चम्पारन तथा पुर्णिया में भी विविध स्कूलों की संख्या बढ़ गई। इन स्कूलों मे तो लोग शिक्षा प्राप्त करते ही थे। इनके अलावा कलकत्ता, बनारस और इलाहाबाद में भी मिथिला प्रवासी ज्ञानार्जन करते थे। बनारस में तो मिथिला राज्य की ओर से बाकायदे छात्रवृत्ति का भी प्रबध था।

नव-जागृति के इस काल में सर्वत्र जातीय (साम्प्रदायिक) संस्थाओं का भी जन्म हुआ। कायस्थ महासभा, क्षत्रिय महासभा, ब्राह्मण महासभा, नाई महासभा आदि सस्थाओं का जन्म १९०० से १९१२ तक हुआ। इन संस्थाओं का उद्देश्य अपने-अपने समाज में शिक्षा और संस्कृति का विकास करना था। मिथिला में भी नव-जागृत्ति का प्रभाव पड़ा। परिणाम स्वरूप १९१० में मैथिल महासभा की स्थापना हुई। मैथिल ब्राह्मणों में शिक्षा के लिये छात्रवृति का प्रबंध किया गया। किन्तु इन सबके अलावा मैथिली भाषा और साहित्य को भी प्रोत्साहन देने का उद्योग किया। इस उद्देश्य से कलकत्ता, पटना, पुर्णिया, भागलपुर, मुजफ्फरपुर, बनारस, प्रयाग, आगरा, इटावा, झांसी, हाथरस, मथुरा, जबलपुर, अजमेर, जयपुर और अलवर आदि में विविध नामों से अनेक सस्थाएँ खुलीं।

ज्ञान और कर्म दोनों क्षेत्रों में समय-समय पर काशी से महत्वपूर्ण कार्य होते रहे हैं, जिसे सभी जानते हैं। मिथिला की नव-जागृति में भी काशी का हाथ है। १७वीं शती से ही काशी में मैथिल विद्वानों का जमघट होने लगा। काशी-प्रवासी मैथिलों ने सर्वप्रथम नव-जागृति की गरज से 'मिथिलामोद' नामक मासिक पत्र प्रकाशित किया, जिसके परिणामस्वरूप मैथिल महासभा की स्थापना हुई। 'मिथिलामोद' ने नागरी लिपि का प्रयोग किया। साहित्यिक जागरण के लिये भी इसने आन्दोलन किया। परिणामस्वरूप महाराज दरभगा के सरक्षण में साहित्य के आकर-ग्रन्थों के संपादन का कार्य शुरू हुआ। मैथिल विद्वानों के प्रयत्न से राज बनैली के श्री कीर्त्यानन्द सिंह बहादुर ने कलकत्ता विश्वविद्यालय को मैथिली के अध्ययन के लिये रुपया दिया और १९१७ ई० में कलकत्ता विश्वविद्यालय में मैथिली चेयर की स्थापना हुई। यहीं से प्राचीन मैथिली के महत्वपूर्ण गद्य ग्रन्थ 'वर्णरत्नाकर' पर डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या और श्री बबुआजी मिश्र ने महत्व-पूर्ण कार्य किये।

नव-जागृति के इन सब महत्वपूर्ण कार्यों के परिणाम-स्वरूप १९३१ ई० मे मिथिला में मैथिल-साहित्य-परिषद् की स्थापना हुई। इसकी स्थापना में सर्व श्री शशिनाथ चौधरी, नरेन्द्रनाथ दास और भोलालाल दास आदि ने प्रमुख भाग लिया। नव-जागृति के इस काल में मैथिली

भाषा और साहित्य के प्रति जनसाधारण में भी जागृति पैदा हो गई।

मैथिली पत्रकारिता

सर्वप्रथम सन् १७६८ में वोल्ट्स नामक व्यक्ति ने बंगाल में प्रेस खोला। इसके वाद हेस्टिंग्ज के समय में चार्ल्स विल् किन्सन ने बंगाली टाइप का निर्माण किया। सन् १७९४ में करे ने बंगाल में दूसरी बार प्रेस खोला। आगे चलकर श्रीरामपुर के मिशनरियों ने हिन्दी के टाइप बनाए। मिशनरियों ने ही छापेखाने का विकास किया। सन् १८३५ ई० तक उत्तर प्रदेश के भी बड़े-बड़े नगरों में प्रेस खुल गए। सन् १७८० से १८५७ के बीच कलकत्ता से अनेक अंग्रेजी और देशी भाषाओं के पत्र प्रकाशित होने लगे। सन् १८२६ मे 'उदन्त मार्तण्ड' नामक सर्व प्रथम हिन्दी भाषा का पत्र निकला। उसका उद्देश्य हिन्दी भाषा-भाषियों में विविध विषयों का प्रचार करना था। यह एक वर्ष चलकर बन्द हो गया। किन्तु इसके वाद ही उत्तर भारत के अनेक प्रसिद्ध नगरों से हिन्दी भाषा और नागरी लिपि में समाचार पत्र प्रकाशित होने लगे।

बंगला और हिन्दी भाषा तथा साहित्य के विकास का प्रभाव मैथिली प्रदेश पर भी पड़ा। मैथिल विद्वानों ने भी विचारों और भावों के प्रचार के लिये मैथिली भाषा को वाहन

बनाने का निश्चय किया। उन्होंने मैथिली भाषा तथा नागरी लिपि में मासिक पत्रों का प्रकाशन प्रारभ किया। मैथिली भाषा के पत्रों के प्रकाशन का क्रम इस प्रकार है—

१—*मैथिल हित साधन* (१६०५ ई०)—प्रथम मासिक पत्र। यह तीन वर्ष तक चलकर बद हो गया।

२—*मिथिला मोद* (१६०६ ई०)—यह काशी से प्रकाशित हुआ। इसके संपादक श्री मुरलीधर झा (१६०६ से १६२० ई०), अनूप मिश्र और सीताराम झा (१६२० से २७ तक) उपेन्द्र झा (१६३६ से ४१ तक) बीच में कुछ समय के लिये यह बन्द हो गया था, किन्तु पुन चालू हो गया। मैथिल मासिकों में यह सबसे दीर्घकालीन पत्र है।

३—*मिथिला मिहिर*—यह १६०८ में दरभंगा से प्रकाशित हुआ। १६०८ से १६११ तक मासिक था, इसके बाद साप्ताहिक हो गया। १६३० से ३१ तक इसके हिन्दी और अंग्रेजी संस्करण भी प्रकाशित हुए। इसके संपादको का क्रम इस प्रकार है—१६०८ से ११-१२ तक श्री विष्णुकान्त झा शास्त्री, इसके बाद १६१६ तक श्री परमेश्वर झा, जगदीश प्रसाद ओझा, और योगानन्द कुमार। १६१६ से २१ तक जनार्दन झा "जनसीदन" और (१६२२—३५ तक) और कपिलेश्वर झा शास्त्री। १६३५ से ५४ तक सुरेन्द्र झा 'सुमन'। इसका मिथिला विशेषाक बहुत सुन्दर निकला था। मैथिली पत्रों में इतना दीर्घकालीन कोई पत्र नहीं हुआ है।

४—*मैथिल प्रभा*—यह अगस्त १६२० से दिसम्बर १६२४ तक अजमेर से प्रकाशित हुआ और जून १६२५ से २६ तक आगरा से। इसके संपादकों में रामचन्द्र मिश्र 'जइत' का नाम उल्लेखनीय है।

५—*मैथिल प्रभाकर*—यह अक्टूबर १६२६ से जनवरी १६३० तक अलीगढ़ से प्रकाशित हुआ। इसके भी संपादक रामचन्द्र मिश्र 'जइत' थे। इसकी विशेषता यह थी कि मैथिली और हिंदी दोनों भाषाओं में निकला।

६—*श्री मैथिली*—(१६२५ से २७) संपादक—उदितनारायण दास और नन्दकिशोर लाल। इसी ने सबसे पहले भाषा के सरल रूप और साहित्यिक आलोचना पर ध्यान दिया। इसने लम्बे-लम्बे किन्तु उपयोगी लेख प्रकाशित किए। साहित्येतर विषयों पर लेख प्रकाशित करने का श्रेय भी इसी को है। इस पत्र के द्वारा मैथिली भाषा का क्षेत्र व्यापक हुआ।

७—*मिथिला*—(१६२६ से ३१ तक) कुशेश्वर कुमर और भोलालाल दास। इसे अपने काल का मैथिली का सर्वोत्तम मासिक कहा जा सकता है। यह विविध विषय विभूषित था। इसने सामाजिक विषयों की ओर विशेष ध्यान दिया। इस कारण अनेक विवाद उठ खड़े हुए। इसी विवाद में पत्रिका समाप्त हो गई। इसने भी मैथिली गद्य के निर्माण में महत्त्वपूर्ण काम किया।

८—*मिथिला मित्र*—(१९३१—३२) यह पाक्षिक था। इसका संपादन क्रमश. गौरीनाथ झा, धनुषधारीलाल दास, महेश झा और शशिनाथ चौधरी ने किया। कुछ समय बाद यह मासिक हो गया।

९—*मैथिल बंधु*—१९३५ ई० में अजमेर से निकलकर १९४३ में बन्द हो गया। किंतु पुनः १९४७ में प्रकाशित हुआ। इसके संपादकों मे रघुनाथ प्रसाद मिश्र और लक्ष्मीपति सिंह का नाम उल्लेखनीय है। यह विशेष रूप से प्रवासी, मैथिलों का पत्र था तथा है भी।

१०—मैथिली युवक—यह १९३८ से ४१ तक अजमेर से प्रकाशित होता रहा। इसके संपादक चुन्नीलाल झा थे।

११—जीवन प्रभा—झांसी से १९४० में प्रकाशित होकर १९५० तक चलता रहा। इसके संपादक व्रजमोहन झा थे।

१२—मिथिला मोद—(नया संस्करण १९३६ से ४१)

१३—भारती—(१९३७) संपादक भोलालाल दास।

१४—विभूति—(१९३७ से ३८) इन दोनों को मैथिली पत्र-कारिता का आदर्श कहा जा सकता है। इनमें साहित्यिक आलोचना और आकर ग्रन्थों का प्रकाशन भी हुआ। इन दोनों की भाषा प्रौढ़ और प्रांजल थी। 'विभूति' का झुकाव तो क्रांति की ओर था।

१५—मैथिल साहित्य पत्र—(१९३७—३९) संपादक—श्री रमानाथ झा—यह त्रैमासिक था। इसका उद्देश्य स्थायी

महत्व की रचनाओं का प्रकाशन था। मैथिली गद्य साहित्य के प्रकाशन में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

प्रकाशित ग्रंथः—

१—गोविंद शृंगार भजन—सं० डा० श्री अमरनाथ झा

२—उदयन कथा—ले० श्री रमानाथ झा

३—वेक फिल्डक पादरी—

(गोल्डस्मिथ के वेकफिल्ड का अनुवाद) श्री दीनानाथ झा

४—रामायण शिक्षा—ले० श्री बलदेव मिश्र

५—उषाहरण नाटिका—मूल ले० रत्नपाणि, सं० दीनानाथ झा

६—कीचक वध—श्री तन्त्रनाथ झा

७—एकावली परिणय—श्री बदरीनाथ झा

८—शकुन्तला का अनुवाद—श्री ईशनाथ झा

९—चीनीक लड्डू—श्री ईशनाथ झा

१०—सांख्य शास्त्र—श्री दुर्गाधर झा

१६—मिथिला ज्योति—१९४८-४९ संपादक, लक्ष्मीपति सिंह तथा दुर्गापति सिंह।

१७—मिथिला दर्शन—कलकत्ते से प्रकाशित मासिक पत्रिका। श्री प्रबोधनारायण सिंह के संपादकत्व में चल रही है।

१८—मिथिला सेवक—कलकत्ते से प्रकाशित-साप्ताहिक।

१९—वैदेही—दरभंगे से प्रकाशित-मासिक पत्रिका।

इस प्रकार मैथिल भाषा में पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन से मैथिली गद्य ने प्रौढ़ता प्राप्त कर ली।

अनुवाद साहित्य

सपूर्ण भारतीय भाषाओं में नवीन प्रवृत्तियों का प्रवेश अनुवाद के द्वारा हुआ है। भारतीय भाषाओं में पत्रकारिता नहीं थी। यहां अंग्रेजी माध्यम द्वारा ही पत्रकार कला का विकास हुआ। भारतीय साहित्य में उपन्यास कला का अभाव था। अनुवाद के द्वारा ही यहां उपन्यास कला का विकास हुआ। कहानियों के लिये भी यही कहा जा सकता है। अनुवाद के द्वारा न केवल साहित्य के विभिन्न रूपों का विकास ही हुआ, वरन् भाषा ने भी एक नया रूप लिया। आधुनिक गद्य के विकास में अनुवादों का महत्त्वपूर्ण हाथ रहा है।

हिंदी और बंगला दोनों का प्रभाव आधुनिक मैथिली साहित्य पर पड़ा। मैथिली भाषा में भी आधुनिकता का प्रवेश विदेशी विशेष रूप से अंग्रेजी साहित्य के अनुवाद द्वारा हुआ। मैथिली में गोल्डस्मिथ के 'वाइकर आफ वेक फील्ड' का अनुवाद श्री दीनानाथ झा ने किया, 'लैम्बस् टेल्स फ्राम सेक्शपीयर' का अनुवाद श्री जालेश्वर सिंह ने किया, चापेक के 'मदर' का अनुवाद श्री उमानाथ झा ने किया और 'एसेप्स फेबुल' का अनुवाद रामानन्द ठाकुर महोदय ने किया। इस प्रकार विदेशी साहित्य का अनुवाद तो मैथिली भाषा में हुआ। किन्तु इन अनुवादों से किसी निश्चित योजना का बोध नहीं होता। यदि 'एसेप्स फेबुल' हितोपदेश और पचतन्त्र की

भाँति जनप्रिय लोककथाओं का संकलन है, तो 'मदर' एक लेखक की अन्यतम कृति। गोल्डस्मिथ के 'वाइकर आफ वेगफील्ड' का तो अनुवाद हुआ, परन्तु उसके दूसरे ग्रन्थों का अनुवाद नहीं हुआ। और भी अंग्रेजी के महत्त्वपूर्ण ग्रंथों का अनुवाद नहीं किया गया। इससे सिद्ध होता है कि निश्चित योजना से महत्वपूर्ण ग्रंथों का चुनाव नहीं किया गया। जिसको जो लगा, उसने उसका अनुवाद कर दिया; और प्रारंभिक काल में यही प्रवृत्ति सर्वत्र थी।

किन्तु संस्कृत के अनुवाद में एक क्रम है। उपनिषद्, महाकाव्य, पुराण, कथा ग्रंथ, नाटक, धर्मशास्त्र, कर्मकांड, काव्य, छंद शास्त्र आदि सभी महत्त्वपूर्ण विषयों के ग्रंथों का पूरा अथवा संक्षिप्त अनुवाद किया गया। अनुवाद के इस महत्त्वपूर्ण कार्यमें प्राय: सभी मैथिल विद्वानों का कुछ न कुछ योग रहा है। इससे स्पष्ट होता है कि इस दिशा में मैथिल समाज के सहयोग से अनुवाद साहित्य अनुप्राणित होता रहा। बंगला भाषा से मुख्यतः बंकिमचन्द्र, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, शरद्चन्द्र और रवीन्द्र नाथ ठाकुर के उपन्यासों और कहानियों का तथा माइकेल मधुसूदन दत्त के लेखों और कविताओं का अनुवाद हुआ। बंगला से अनुवाद का करीब-करीब यही क्रम हिंदी में भी रहा है। मैथिली हिंदी की पड़ोसी भाषा है। उस पर हिंदी का भी प्रभाव पड़ा। प्रेमचन्द और प्रसाद की कुछ कहानियों का अनुवाद भी मैथिली में हुआ।

इन अनुवादों से मैथिली भाषा का शब्दकोश कुछ बढ़ा, कुछ नये शब्द बने, साहित्य के कुछ नये रूपों (फार्मों) से मैथिली भाषा भाषियों का परिचय हुआ। इसके साथ ही मैथिल विद्वानों को अपनी भाषा की शक्ति तथा कमजोरी का भी बोध हुआ।

सस्कृत से अनुवाद करनेवालों में सर्वप्रथम चन्दा झा का नाम आता है, जिन्होंने विद्यापतिकृत 'पुरुष परीक्षा' का गद्य पद्य मय अनुवाद किया। अच्युतानन्द दत्त ने रघुवंश का अनुवाद प्रकाशित किया, परमानन्द दत्त 'परमार्थी ने मेघदूत का अनुवाद प्रकाशित किया।

अनुवाद के कार्य को समसामयिक पत्रों से प्रोत्साहन मिला, तो 'मोद' मे त्रिलोचन झा ने 'गीता' का अनुवाद प्रकाशित किया, उसी पत्र में बकिम बाबू की कपाल कुडला का अनुवाद 'रूपस' द्वारा प्रकाशित हुआ। 'मिहिर' में डा० श्री सुभद्र झा ने 'मीना' नामक उपन्यास प्रकाशित किया, जिसका अनुवाद इतालियन भाषा से किया गया था।

इधर भी इस दिशा में कार्य हो रहा है—कालिदास की कृतियों के अनुवाद प्रकाशित हुए हैं—शकुंतला (ईशनाथ झा) मालविकाग्निमित्र (गोविंद झा)।

भास नाटकावली का गद्यमय अनुवाद श्री जीवानन्द ठाकुर ने प्रकाशित किया है। शूद्रक कृत 'मृच्छकटिक' का भी अनुवाद श्री ईशनाथ झा ने प्रकाशित कराया है। प्रो० श्री तन्त्रनाथ

झा ने हितोपदेश का अनुवाद गद्य पद्य मय किया है। श्री वेदानन्द झा द्वारा गीता का अनुवाद 'गीतामृत' के नाम से प्रकाशित हुआ है। इस प्रकार मैथिली भाषा में अनुवाद साहित्य की संख्या भी कुछ कम नहीं है। हां, एक नियोजित ढग से न तो संपूर्ण साहित्य के अनुवाद की योजना बनी है और न काम ही हो रहा है। यद्यपि यह युग योजनाबद्ध कार्य का है।

आधुनिक मैथिली काव्य

जिस प्रकार आधुनिक हिंदी के जनक भारतेंदु हरिश्चन्द्र हैं, उसी प्रकार आधुनिक मैथिली के जन्मदाता कविवर श्री चन्दा झा हैं। चन्दा झा का जन्म १८३० ई० मे रामनवमी के दिन दरभंगा जिले के पिड़ारुछ गांव में हुआ। इन्होंने काशी में संस्कृत का अध्ययन किया। सर्वप्रथम नरहन राज्य में और तत्पश्चात् दरभंगा महाराज श्री लक्ष्मीश्वर सिंह के यहां राजकवि हुए। विद्वत्ता और काव्य की दृष्टि से कवि चन्दा झा और विद्यापति में अनेक समानताएँ हैं। दोनों संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित थे, दोनों दरभंगा जिले के थे, दोनों ने मैथिली भाषा में सुन्दर कविता की। पर एक बात में दोनों में अन्तर है। मैथिली में कविता करने के कारण मिथिला के पंडितों ने विद्यापति की निन्दा की। किन्तु चन्दा झा के समय में परिस्थिति वदल गई थी। चन्दा झा के मैथिली भाषा में रचित

'रामायण' का तत्कालीन मैथिल पंडितों ने आदर किया। इनकी निम्नलिखित मैथिली रचनाएँ उपलब्ध हैं—

१—पुरुष परीक्षा (विद्यापति के पुरुष परीक्षा का मैथिली में गद्य-पद्यमय अनुवाद),
२—मिथिला भाषा रामायण,
३—महेश्वानी संग्रह,
४—चन्द्र पद्यावली,
५—अहल्याचरित नाटक,
६—गीत सप्तशती,
७—गीतसुधा।

चन्दा झा का 'रामायण' (१८६८ ई०) महत्त्वपूर्ण काव्य है। कहा जाता है कि महाराजाधिराज लक्ष्मीश्वर सिंह के दरबार में इस महाकाव्य की एक-एक पक्तियों पर विचार किया गया था। निसन्देह यह एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। इसकी भाषा के माधुर्य और शैली ने जनता को शीघ्र ही अपनी ओर आकर्षित किया। इसके पद बहुत से संस्कृत में हैं, पर गीतों में मैथिली भाषा का राज है।

इनकी काव्यगत विशेषताएँ इनके रामायण में विशेष रूप से देखने को मिलती हैं। एक उदाहरण यहां दिया जाता है। बाल्मीकि रामायण में अहल्या प्रकरण मे कवि अहल्या को ही दोषी ठहराते हैं—

अथाब्रवीत्सुरश्रेष्ठ कृतार्थेनान्तरात्मना।
कृतार्थास्मि सुरश्रेष्ठ गच्छ शीघ्रमित. प्रभो।
आत्मानं मां च देवेश सर्वथा रक्षा गौतमात्॥

गोस्वामी तुलसीदास ने अपने रामचरितमानस में—

आश्रम देखि एक मग माहीं। खग मृग जीव जंतु तह नाहीं॥
पूछा मुनिहिं प्रभु देखी। सकल कथा मुनि कही विसेपी॥

केवल इतना कहकर घटना पर आवरण डाल दिया, अपने भाव को प्रकाशित नहीं होने दिया। उन्होंने अपनी रचना में यह विशेषता अवश्य दिखलाई कि अहिल्या ने मुनि के शाप को भी अच्छे भाव में स्वीकृत किया, क्योंकि उसी के कारण उसे राम के दर्शन हुए—

मुनि साप जो दीन्हा अति भल कीन्हा परम अनुग्रह मैं माना।
देखेऊ भरि लोचन हरि भवमोचन इहै लाभ शंकर जाना॥

अब इस संबध में कवि चदा झा की विशेषता देखिए। अहिल्या राम से कहती है—

हमर गति अपने सौ के आन।
करुणागार दीन प्रतिपालक रामचंद्र भगवान॥
पिता विधाता घुरि नहिं तकलनि पति मति भेलहु पखाव।
सुरपति कुमति विदित भेल कतय न हम अवला की शान॥
जतु मात्र से वर्जित आश्रम नहिं भोजन जलपान।
वरष हजार बहुत एत गत भेल रामचरण में ध्यान॥
सगुन ब्रह्म अपने का देखल निर्गुन मन अनुमान।
चद्र सुकवि मन लाभ एहन सन त्रिभुवन सुनल न कान॥

यहाँ 'सुरपति कुमति विदित भेल कतय न हम अवला की

ज्ञान' पद के द्वारा कवि ने सारा दोष सुरपति इन्द्र पर ही डाला है और इस प्रकार अहल्या की रक्षा की है।

चन्दा झा ने मिथला निवासियों मे अपने देश के प्रति अभिमान जाग्रत करने के लिये भी कुछ कविताएँ कीं। उनका 'मिथिला वर्णन' प्रसिद्ध है—

मिथिला वर्णन

की दिव्य भूमि मिथिला हम आबि गेलौं।
देखैत गात्र मन लक्ष्मण तृप्त भेलौं॥
की दिव्य फूल फल वृक्ष अनत धान।
पक्षी विलक्षण करैं अछि रम्य गान॥

प्रपूर्ण संतड़ाग की सुधा समान वारि सौं।
विचित्र पद्मिनी बनी बिहग वारिचारि सौं॥
द्विरेफ गुंजि कै महामदधि घूमि कै।
सरोजनी क अंग सुप्त बार बार चूमि कै॥

शालि गोप गीति कों सुप्रीति रीति सूनि सूनि।
श्वेत शस्य छाथि तैं कुरंग आखि मूनि मूनि॥
सत्य तीरहूति यज्ञभूमि पुन्य देनिहारि।
शास्त्र कैं बजैत वेस कीर वैसि डारि डारि॥

नदीमातृक क्षेत्र सुन्दर शस्य सौं संपन्न।
समय सिर पर होय वर्षा बहुत सचित अन्न॥

दयायुत नर सकल सुन्दर स्वच्छ सम व्यवहार ।
सकल विद्या उदधि मिथिला विदित भरि संसार ॥

गंगा बहथि जनिक दक्षिण दिशि पूर्व कौशिकी धारा ।
पश्चिम वहथि गंडकी उत्तर हिमवद्वल विस्तारा ॥
कमला त्रियुगा अमृता धेमुड़ा वागमती कृतसारा ।
मध्य वहथि लक्ष्मणा प्रभृति से मिथला विद्यागारा ॥

रामायण की रचना चन्दा झा ने 'आध्यात्म रामायण' को आधार मानकर की है। इसमें अनेक स्थल पर ऐसा भान होता है जैसे कवि ने 'आध्यात्म रामायण' की पंक्तियों का अक्षरशः अनुवाद ही कर दिया हो। इसमें जगह-जगह पर लोकोक्तियों का प्रयोग इस ग्रंथ को अत्यन्त सरस बना देता है। वर्णन तो इतने स्वाभाविक हुए हैं, जिसे कोई पाठक सहज ही अनुमान कर सकता है। चंदा झा की सबसे बड़ी विशेषता है, उनका छन्द विषयक ज्ञान। रामायण में कवि ने जितने छंदों का प्रयोग किया है, उतने छंद भारतीय भाषा में अत्यन्त कठिनाई से मिलेंगे। हिंदी में इस तुलना में हम केशवदास की रचना को उपस्थित कर सकते हैं। किंतु चंदा झा ने केवल छन्द के लिये छन्दों की रचना नहीं की। इन्होंने संस्कृत से छन्द तो लिये ही, साथ ही मिथिला में प्रचलित अन्य छन्दों को भी अपनी रचना में स्थान दिया है। इसलिये 'रामायण' में कहीं-कहीं मिथिला देशीय प्रयोग भी मिल जाते हैं।

चन्दा झा की प्रतिभा बहुमुखी थी। इन्होंने काव्य की रचना तो की ही, इसके अतिरिक्त 'मिथला इतिहास' पर भी महत्त्वपूर्ण कार्य किया, जिसका विकसित रूप हमें म० म० परमेश्वर झा के 'मिथिला तत्व विमर्श' में मिलता है। साथ ही इन्होंने स्व० नगेन्द्रनाथ गुप्त को विद्यापति के गीतों की खोज में अपनी अनुसंधानात्मक प्रवृत्ति का भी परिचय दिया तथा महाकवि गोविंद दास की रचना को प्रकाश में लाने और इन्हें मैथिल घोषित करने का भी श्रेय इन्हीं को है। इनके अपने हाथ की लिखा 'गोविंद शृंगार भजन' की प्रति अभी डॉ० श्री अमरनाथ झा के यहा मौजूद है।

श्री *लालदास* का 'रामेश्वर चरित मिथिला रामायण' (१९१४) शक्ति को प्राधान्य देकर लिखा गया है, कारण कवि का विश्वास है कि विश्व शक्तिमय है तथा संपूर्ण सृष्टि मंडल में शक्ति की ही प्रधानता और व्यापकता है। इसीलिए कवि ने शक्ति की प्रार्थना से ग्रंथारम्भ किया है तथा शक्ति चरित्रमय पुष्कर कांड' लिखकर उसे समाप्त भी किया है। यह ग्रंथ वाल्मीकि रामायण के अनुकरण पर लिखा गया है, जो कवि के इस उक्ति से स्पष्ट है—

"आदि कवीन्द्रक सुधा समुद्र।
कथा हमर कृत सरिता क्षुद्र॥

किंतु कवि के सामने तुलसी का भी आदर्श उपस्थित है, कारण इसमें भी चौपाई, दोहा, सोरठा आदि का प्रयोग वैसा

ही हुआ है। चदा झा की तरह छन्दों एवं रागों की विविधता नहीं है। भाषा सरल एवं सुबोध है। इस ग्रंथ में सीता की प्रधानता स्थापित की गई है। जिस प्रकार 'उर्मिला' को ध्यान में रखकर 'साकेत' की रचना हुई है, उसी तरह 'सीता' को ध्यान में रखकर इस ग्रंथ की रचना बहुत पहले हो चुकी है।

श्री रघुनन्दन दास का 'सुभद्रा हरण' (१६३७ से १६४४ ई०) दस अंकों में समाप्त हुआ है। इसकी पृष्ठभूमि विस्तृत और शैली प्रसादपूर्ण है। इस पर हिंदी की काव्य शैली का प्रभाव पड़ा है। इसका ऋतु वर्णन सुंदर है।

श्री *बदरीनाथ झा* कविशेखर के 'एकावली परिणय' (१६३७-४२) पर संस्कृत काव्यों का प्रभाव है। यह देवी भागवत के छठे स्कध पर आधृत है। इसमें १५ परिच्छेद हैं। एकावली नायिका का नाम है। इसकी कथा में सतुलन का अभाव है—महत्त्वपूर्ण घटनाओं पर ध्यान नहीं दिया गया है।

श्री *अच्युतानद* दत्त, भलुआही, जिला भागलपुर के रहनेवाले कर्ण कायस्थ थे। संस्कृत, हिंदी और मैथिली साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान थे। हास्य रस के अच्छे लेखक थे। महाभारत का मैथिली मे अनुवाद किया है। 'वताहि', 'सत्य हरिश्चद्र' और 'कृष्ण चरित्र' नामक काव्य ग्रंथ प्रकाशित हैं। किन्तु 'कृष्ण चरित्र' (१६४०—४४) मे चरित्र-चित्रण कमजोर है।

श्री *तन्त्रनाथ झा*, उजान (दरभंगा) निवासी हैं। इनका 'कीचक वध' मनोहर काव्य है। कुछ विद्वानों का तो यहां तक कहना है कि चन्दा झा के रामायण के बाद यही सफल काव्य है। इस पर भी संस्कृत भाषा का व्यापक प्रभाव है। माइकेल मधुसूदन दत्त की शैली के अनुकरण पर चतुर्दशपदी और अमित्राक्षर छंद को मैथिली मे प्रवर्तित किया गया है। इस काव्य में कथा का उत्तम विकास है। द्रौपदी की मनःस्थिति का इसमें अच्छा वर्णन है। इसकी कल्पना आधुनिक मैथिली की कविताओं में महत्त्वपूर्ण है। पर काव्य पूर्ण नहीं है। इनके लिखे मैथिली में अनेक मुक्तक गीत भी हैं। एकांकी नाटकों का संग्रह भी इनका प्रकाशित है तथा हितोपदेश का गद्य पद्यमय अनुवाद भी किया है। इन्होंने विद्यापति कृत 'कीर्ति लता' का सरल मैथिली पद्य में अनुवाद किया है, जिसका कुछ अंश प्रकाशित है।

श्री *गौरीशंकर झा* ने बंगला के प्रसिद्ध कवि माइकेल मधुसूदन दत्त के मेघनाथ वध का सुन्दर अनुवाद १९४१ में प्रस्तुत किया। इस अनुवाद में मूल कविता के सौंदर्य की पर्याप्त रक्षा की गई है।

श्री *वैद्यनाथ मिश्र 'यात्री' (नागार्जुन)*—ग्राम तरौनी, जिला भागलपुर निवासी। इनका एक नाम 'वैदेह' भी था, जो अब दब गया है। ये हिंदी भाषा के भी श्रेष्ठ कवि और कथाकार है। हिंदी में इनकी निम्नलिखित रचनाएँ प्रकाशित हैं—

रतिनाथ की चाची, वलचनमा, नई पौध, बाबा बटेसरनाथ, शपथ, युगधारा।

मैथिली में चित्रा (स्फुट कविताओं का संग्रह), पारो (उपन्यास), नवतुरिया (उपन्यास)।

इन्होंने पहले बौद्ध धर्म स्वीकार किया था। भिक्षु भी हो गए थे। किन्तु नजदीक से बौद्धों का रूप देखने पर भिक्षु रूप का त्याग कर दिया। संस्कृत, पालि, हिंदी और मैथिली पर इनका समान अधिकार है। इन्होंने सपूर्ण भारतवर्ष का भ्रमण किया है। पहले ये संस्कृत में लिखते थे। कविवर सीताराम झा जी से प्रभावित होकर ये अपनी मातृ भाषा में लिखने लगे। यदि हिंदी के नागार्जुन ने हिन्दी को 'बादल को घिरते देखा है', 'रवि ठाकुर' 'तालाब की मछलियां' आदि विशिष्ट रचनाएं दी हैं, तो वही नागार्जुन 'यात्री' के रूप में मैथिली को 'कविक स्वप्न', 'प्रेयसी', 'लखिमा', 'गामक चिट्ठी' 'परम सत्य' आदि रचनाएँ देकर अपनी मातृभाषा के भंडार को पूर्ण किया है। इस प्रबुद्ध युग में समाज को कैसा कवि चाहिए? क्या कवि लोग अभी भी अपने को 'कुमुद' चद्र, शरद—वसत आदि तक अपने को सीमित रक्खें? इन प्रश्नों का समीचीन उत्तर तथा काव्य रचना पर आधुनिकता का प्रभाव एव भारतीय अन्य भाषा साहित्य का मैथिली पर प्रभाव आदि का ज्ञान अथवा प्रश्नावलियों का समाधान अकेले यात्री की रचनाओं में मिल सकता है। हां, मैथिली की रचना

इनकी ठेठ शब्दों से पूर्ण है, जिसे अमैथिल जरा कठिनता से समझ सकते हैं।

श्री *पुलकितलाल दास 'मधुर'*–ग्राम बनगामा, जिला भागलपुर निवासी कर्ण कायस्थ। मैथिली के कवि और निबंधकार। मैथिली रचनाएं—'केतकी' (खंडकाव्य), 'लोपामुद्रा' (उपन्यास)

मथुरानद चोधरी 'माथुर'—'कानन कन्या' (१६४५) यद्यपि त्रुटि शून्य नहीं है फिर भी इसकी विशेषताएं हैं। इसमें नवीन लेखक ने अर्वाचीन मिथिला की समस्याओं का सुदर ढंग से समावेश किया है। छन्द तथा शैली में भी नवीनता है।

मुक्तक

मुक्तक की परम्परा में सबसे पहले तो संस्कृत और हिंदी के अनुवाद हैं—उदाहरणतः नीति शतक, चाणक्य शतक, भामिनी विलास आदि। इसके आलावा विहारी सतसई का भी अनुवाद हुआ है। इसके अनुवादक हैं श्री धनुषधारी लाल दास।

समस्या पूर्तियों का भी मैथिली में प्रचलन है। किन्तु जिस प्रकार अब हिंदी में यह धारा क्षीण हो रही है, उसी प्रकार मैथिली में भी।

आधुनिक मैथिली भाषा के मुक्तकों में कविवर चन्दा झा का नाम विशेष आदर के साथ लिया जाता है। किन्तु सीताराम झा भी बहुत प्रसिद्ध हैं। चन्दा झा के मुक्तक जरा

गम्भीर होते हैं। किन्तु सीताराम झा की मुक्तक रचनाएं विशेष लोकप्रिय हैं। इनके संग्रहों का नाम 'शिक्षा सुधा' और 'लोक लक्षण' आदि हैं। इनका विषय भी लोक प्रचलित है। मूर्ख लक्षण देखिए—

अनुकूलहुकें प्रतिकूल बुझैछ सुझैछ हिताहित ने जकरा।
नहि जेष्ठ कनिष्ठ विचार करए बिनु नोंतहि जाइछ जे हकरा॥
ककरा लग कोन प्रकार रही न जनं अछि मूर्ख बुझू तकरा।
धरती पर भार स्वरूप सदा बिनु नाङरि सींङ से 'बकरा'॥

श्री प्रो० हरिमोहन झा—झा जी के हास्य प्रधान स्केच बड़े अच्छे उतरे हैं। इसमें चतुरशिल्पी की तरह कवि ने बड़े ही स्वाभाविक ढंग से मिथिला की कुलीन प्रथा की ओर संकेत किया है। हास्य के अन्तस्तल में उपदेश का भी अंश प्रक्षिप्त है। भाषा तो इतनी सरस, सरल तथा स्वाभाविक है कि कोई भी पाठक सहज मुग्ध हो सकता है।

आधुनिक गीतिकाव्य

प्राचीन काल में मैथिली में जो गीतिकाव्य रचित हुए, वे सब किसी न किसी राग-रागिनी से संबद्ध थे। पर आधुनिक काल में यह बात नहीं है। अब गीतिकाव्य को राग-रागिनी से सम्बद्ध करने की पद्धति खतम हो गई। श्री भुवनेश्वर सिंह 'भुवन' ने अपने गीतिकाव्य 'आषाढ़' में इस बात की घोषणा

की है कि अब गीतिकाव्य में राग-रागनियों का संबध आवश्यक नहीं है।

१६३० ई० से अनेक कवियों ने इसी तथ्य को स्वीकार कर अपनी रचनाएँ कीं। इनमें कालिकुमारदास की 'काव्य कुसुमाजलि' तथा लक्ष्मीपति सिंह की 'पद्य पुष्पांजलि', भुवनेश्वर सिंह 'भुवन' की 'आषाढ़' और 'स्मृतिकण',जीवनाथ झा विद्याभूषण की 'कल्पना', काशीनाथ मिश्र 'मधुप' का 'अपूर्व रसगुल्ला', 'झंकार', 'टटका जलेबी', 'शतदल' आदि रचनाएँ मुख्य हैं।

गीतिकाव्य की धारा आगे बढ़ती जा रही है। उसमें नये-नये प्रयोग हो रहे हैं। अब पहले की बात नहीं है। लोग नई शैली में गीतों को लिख रहे हैं। इस दिशा में श्री 'यात्री', श्री गोविन्द झा, प्रो० श्री तन्त्रनाथ झा, श्री ईशनाथ झा, श्री आरसी पसाद सिंह आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

---:०:---

मैथिल गद्य साहित्य

मनुष्य जिस क्रम से सभ्यता की ओर बढ़ता है, उसी क्रम से उसका जीवन वस्तुनिष्ठ होता जाता है। सभ्यता के साथ आवश्यकता बढ़ती है। आवश्यकताओं के साथ जटिलता बढ़ती है। इससे जीवन की प्राकृत सरलता नष्ट होती है। जीवन में कठिनाइयों के बढ़ जाने से व्यावहारिक बुद्धि का विकास हो जाता है। व्यावहारिक बुद्धि के विकास के साथ पदलालित्य और कला का मेल नहीं बैठता, क्योंकि पदलालित्य में रमने के लिये समय की भी अपेक्षा होती है, जिसका ऐसी परिस्थिति में अभाव होता है। ऐसी परिस्थिति गद्य के अधिक अनुकूल होती है।

संपूर्ण भारतीय समाज की आधुनिकता के मूल मे भारतवर्ष में अंग्रेज जाति का प्रभाव है। वस्तुतः उन्नीसवीं शताब्दी के भारतवर्ष मे एक नवीन युग का आविर्भाव हुआ। इस समय भारतवासियों का उन्नतिशील अंग्रेज जाति से संपर्क हुआ। यह जाति अपने साथ यूरोपीय औद्योगिक क्रांति का सूत्र लेकर आई। किन्तु अंग्रेज जाति का उद्देश्य भारतवर्ष

में औद्योगिक क्रांति करना नहीं था। उनका उद्देश्य शोषण था। इसी उद्देश्य से उन्होंने नई शिक्षा पद्धति का प्रवर्तन किया, इसी उद्देश्य से उन्होंने कुछ उद्योग खोले। प्रेस के प्रचार में भी उनका यही उद्देश्य निहित था। पर उद्देश्य गलत होते हुए भी ज्ञान का और उद्योग का प्रचार तो उन्होंने किया ही। अंग्रेजी शिक्षा और उद्योगीकरण द्वारा भारतीय भाषाओं में गद्य साहित्य का विकास हुआ। वंगला, हिंदी और उर्दू के गद्य साहित्य की यही कहानी है।

मैथिली साहित्य में गद्य की परम्परा वहुत पुरानी है। 'वर्णरत्नाकर' महत्त्वपूर्ण गद्य ग्रंथ है। किन्तु यह वस्तुनिष्ठ गद्य नहीं है। अलकृत गद्य है। इसे काव्यमय गद्य भी कह सकते हैं। मध्यकालीन मैथिल गद्य में लोच नहीं था, रूढ़ि-बद्धता ही उसका प्रधान लक्षण हो गया है। ऐसा गद्य आधुनिक आवश्यकता के अनुकूल नहीं था। आधुनिक युग में ऐसे गद्य की आवश्यकता नहीं रह गई थी। अब मैथिली भाषा में ऐसे गद्य की आवश्यकता थी, जिसमें समाचार-पत्र निकल सके। निवंधों, लेखों तथा कहानी और उपन्यास की रचना हो सके। आधुनिक वंगला गद्य अपनी आधुनिक प्रवृत्तियों के साथ आगे बढ़ गया था। हिंदी और उर्दू मे भी गद्य साहित्य का विकास हो गया था। ऐसी स्थिति म मैथिली भाषा में भी गद्य की प्रेरणा वलवती हो गई। मैथिल विद्वानों ने भी गद्य की ओर ध्यान दिया।

म० म० डा० सर गंगानाथ झा—जन्म, आश्विन कृष्ण १२७६ फसली। सन् १८८६ ई० में राज स्कूल दरभंगा से मैट्रिक पास किया। प्रयाग विश्वविद्यालय से एफ० ए० और एम० ए० पास किया। प्रत्येक परीक्षा में सर्वप्रथम आए। शिक्षा समाप्त करके दरभंगा राज पुस्तकालय के अध्यक्ष हुए। अध्यक्ष का कार्य करते हुए ही पं० चित्रधर मिश्र से मीमांसा का अध्ययन किया। १६०२ ई० में प्रयाग विश्वविद्यालय में प्रोफेसर नियुक्त हुए, १६०५ में वहीं के 'फेलो' हुए और १६०६ ई० में प्रयाग विश्वविद्यालय के ही सींडीकेट के सदस्य चुने गए। और इसी वर्ष 'डाक्टर आफ लिटरेचर', और १६१० ई० में महामहोपाध्याय तथा १६४१ ई० में 'सर' की उपाधि से विभूषित हुए। १६१८ ई० में कौंसिल आफ स्टेट के सदस्य चुने गए। १६२३, १६२६ और १६२६ ई० में लगातार तीन बार प्रयाग विश्वविद्यालय के वाइसचांसलर चुने गए। संस्कृत, हिंदी तथा अंग्रेजी मे अनेक ग्रंथों की रचना की। मैथिली भाषा और साहित्य के विकास के लिये उद्योग किया। मैथिली भाषा मे 'वेदान्त दीपक' मैथिली साहित्य परिषद् (दरभंगा) से प्रकाशित है।

बबुआ जी मिश्र—कोइलख (दरभंगा) निवासी। भाषा शास्त्र के विद्वान। कलकत्ता विश्वविद्यालय में मैथिली के लेक्चरार थे। इन्होंने डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या के साथ ज्योतिरीश्वर ठाकुर के 'वर्णरत्नाकर' का सुदर सपादन किया है।

जनार्दन झा 'जनसीदन'—कुमर-वाजितपुर, जिला मुजफ्फर-पुर के रहनेवाले, द्विवेदी युग के यशस्वी हिंदी लेखक थे। मैथिली और हिंदी दोनों भाषाओं में सुंदर कविता करते थे। 'मिथिला मिहिर' के सपादक रह चुके थे। बिहार के साहित्यिकों में इनको ऊँचा स्थान प्राप्त था। इनकी रचनाएँ इस प्रकार हैं—'सतासर्वस्व', 'निर्दयी सासु', 'शशिकला', 'कलजुगी संन्यासी और ढकोसलानन्द' 'पुनर्विवाह' और नीति पद्यावली। चिकित्सासागर (खड्गविलास), मनुस्मृति का अनुवाद। बंगला से बहुत-सी पुस्तकों का अनुवाद किया—जैसे, विषवृक्ष, कपालकुंडला, देवी चौधरानी, इन्दिरा, गोरा, मुकुट, नवीन सन्यासी, ऋद्धि, चरित्रगठन, नौकाडूबी (आश्चर्य घटना), स्वर्णलता इत्यादि।

डा० अमरनाथ झा—स्व० डा० गंगानाथ झा के सुयोग्य पुत्र हैं। अंग्रेजी साहित्य के श्रेष्ठ और प्रतिष्ठित विद्वान हैं। प्रयाग विश्वविद्यालय और काशी विश्वविद्यालय के वाइस-चांसलर रह चुके हैं। अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन के सभापति और उत्तर प्रदेश पब्लिक सरविस कमीशन के चेयरमैन भी रह चुके हैं। इस समय बिहार पब्लिक सरविस कमीशन के चेयरमैन और नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के अध्यक्ष हैं। मैथिली के कवि गोविंददास की शृंगार भजनावली और हर्षनाथ ग्रंथावली का सपादन किया है। मैथिली साहित्य परिषद भाषण तथा अन्य समसामयिक लेख प्रकाशित हैं।

स्व० प० दीनबंधु झा—इसहपुर (दरभंगा) निवासी। संस्कृत के प्रकांड विद्वान। इन्होंने 'मैथिली भाषा विद्योतन' नामक मैथिली का व्यवस्थित व्याकरण तैयार कर दिया। यह व्याकरण संस्कृत व्याकरण की शैली पर सूत्र वृत्यात्मक लिखा गया है। इसके अलावा मैथिली का एक अच्छा शब्दकोश भी आपने प्रस्तुत किया है। अलंकार शास्त्र पर भी इन्होंने एक ग्रंथ तैयार किया है।

महामहोपाध्याय मुकुन्द झा बख्शी—पिता का नाम पं० नंदलाल झा बख्शी। जन्मस्थान, ग्राम हरिपुरा, जिला दरभगा। सर्वप्रथम महाराजा लक्ष्मीश्वर सिंह जी की धर्म-पत्नी महारानी लक्ष्मीवती के द्वार-पंडित। पुनः मुजफ्फरपुर धर्मसमाज संस्कृत कालेज के प्राध्यापक। इसके बाद पटियाला राजा के द्वार-पंडित। अंत में काशीवास। प्रमुख रचनाएँ—(१) गीता गीत विलास, (२) मिथिला भाषामय इतिहास, (३) व्याकरण, (४) अमरकोष (टीका)।

महामहोपाध्याय डा० उमेश मिश्र—ग्राम गजहड़ा, जिला दरभगा के रहनेवाले, महामहोपाध्याय पं० जयदेव मिश्र के पुत्र। प्रयाग विश्वविद्यालय में संस्कृत के प्राध्यापक। रचित ग्रंथ—गद्यकुसुम माला, गद्य कुसुमांजलि, साहित्य दर्पण (अनुवाद), शंकर मिश्र (जीवनी), भवभूति (जीवनी), मैथिली वर्णमाला का परिचय, नलोपाख्यान, यक्ष पांडव सवाद, विद्यापति ठाकुर (हिंदी में)। भारतीय दर्शन की रूपरेखा,

भारतीय तर्कशास्त्र (हिंदी में)। परिभाषेन्दु शेखर (विजया सहित), व्युत्पत्तिवाद, (जयासहित), शास्त्रार्थरत्नावली, विज्ञान-दीपिका (पद्मपादाचार्यकृत) वि द ाकर साहसकथ (सुभाषितावली), (संस्कृत में)।

पं० नगेन्द्र कुमार—गल्प समग्रह-ससरफानी, शिकार, दृष्टि-कोण। ये प्रो० हरिमोहन झा की शैली पर लिखते हैं तथा इनकी कहानियाँ भी हास्यप्रधान हैं।

प्रो० शैलेन्द्र मोहन झा--मातृभाषा के भविष्णु लेखक। भाषा तथा शैली पर हिंदी का प्रभाव दिखाई पड़ता है। 'मिश्रबधु' की शैली पर इन्होंने भी मैथिली के नौ कवियों पर परिचयात्मक लेख लिखे हैं। प्रतिभा (उपन्यास), मधुश्रावणी (उपन्यास)।

व्रजकिशोर वर्मा—ये स्केच, कहानी, कविता आदि के सफल लेखक हैं। एक उपन्यास भी प्रकाशित किया है, लोकगीतों पर भी इनके अच्छे निबंध प्रकाशित हुए हैं।

प्रो० हरिमोहन झा, एम० ए०—जन्म १६०८ ई०, कुमर-बाजितपुर (मुजफ्फरपुर)-निवासी स्व० जनार्दन झा 'जनसीदन' जी के सुयोग्य पुत्र हैं। पटना विश्वविद्यालय में दर्शन शास्त्र के प्राध्यापक और दर्शन विभाग के अध्यक्ष हैं। हिंदी में न्यायदर्शन और वैशेषिक दर्शन पर आपके महत्त्वपूर्ण ग्रंथ प्रकाशित हैं। ये दोनों ग्रंथ भी लेखन-शैली और विषय की गम्भीरता की दृष्टि से बेजोड़ हैं। किन्तु इनकी प्रसिद्धि इनके

मैथिली उपन्यासों से है। ये मैथिली के सबसे अधिक लोकप्रिय उपन्यासकार हैं। 'कन्यादान' (१९३०-३३ ई०) और 'द्विरागमन' (१९४३ ई०) इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं, जिनका आपस में संबंध है। 'खट्टरककाक तरंग (दो भाग) प्रणम्य देवता, और रंगशाला भी इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। हिंदी में भी इनके दो महत्त्वपूर्ण ग्रंथ प्रकाशित है।

झा जी मैथिली गद्य के सफल कलाकार हैं। इनकी प्रतिभा बहुमुखी है। उपन्यास, कहानी, स्केच आदि लिखने में बेजोड़ हैं। कहने को तो हास्य लिखते हैं, किन्तु उसके अन्दर दर्शन के कठिन सिद्धान्तो का भी समावेश कर देते हैं। इनकी शैली प्रवाहपूर्ण है। इस तरह का सर्वतोमुखी प्रतिभावान लेखक अभी हिंदी जगत् मे भी नहीं है। हां, कुछ अंशों में अन्नपूर्णानन्द जी की रचनाएँ इनके समक्ष रखी जा सकती हैं, किन्तु उसकी तुलना आंशिक होगी क्योंकि झा जी की लेखनी समाज की कुरीतियों को देखते हुए शास्त्रों की कमजोरियों की भी खबर लेती हैं। इनकी कुछ रचनाओं का अनुवाद हिंदी में भी हुआ है। हिंदी में भी इनके कुछ अच्छे लेख पत्र-पत्रिकाओ में प्रकाशित हुए हैं। मैथिली गद्य को इतना रोचक तथा सर्वप्रिय बनाने का श्रेय बहुत अंशों में झा जी को ही है।

रासबिहारी लाल दास – ग्राम भत्ती, जिला दरभंगा-निवासी कर्ण कायस्थ दुलार सिंह दास के सुपुत्र। इनके 'सुमति' नामक उपन्यास का प्रकाशन १९१८ ई० में हुआ। यह उपदेश-

मूलक है। कथा रोचक है। इसके अलावा 'मिथिला दर्पण' नामक एक ग्रंथ भी लिखा है, जिसमे मिथिला का इतिहास प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है।

कुमार गगानन्द सिह, एम० ए०—श्रीनगर राज्य (पूर्णिया) के राजा स्व० राजा कमलानंद सिंह के सुयोग्य पुत्र हैं, अंग्रेजी, हिंदी और मैथिली के उद्भट लेखक हैं। मैथिली नाट्य-साहित्य तथा अन्य शोधपूर्ण विषयों पर एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल में आपके अनेक निबध प्रकाशित हैं। मैथिली रचनाओं मे 'अगिलही' अपने ढग का अनूठा उपन्यास है। 'विवाह' नामक एक कहानी संग्रह भी है। आपने एकाकी नाटक भी लिखे हैं, जिनमें 'जीवन-संघर्ष' श्रेष्ठ है। इनकी शैली स्वाभाविकता से परिपूर्ण रहती है।

लालदास—खड़ौआ (दरभंगा) निवासी कर्ण कायस्थ, संस्कृत, फारसी और मैथिली के उद्भट विद्वान हैं। इनके रचित ग्रंथ इस प्रकार हैं—(१) पतिव्रताचार, (२) स्त्री शिक्षा, (३) शंभुविनोद, (४) चंडी चरित्र, (५) जानकी रामायण, (६) गणेश खड, (७) रामेश्वरचरित रामायण, (८) लक्ष्मीश्वर चरित रामायण, (९) रामेश्वर चरित, (१०) लक्ष्मीश्वरचरित, (११) गंगाचरित, (१२) विरुदावली, (१३) दुर्गासप्तशती, (१४) हरितालिक व्रत कथा, (१५) वैधव्य मजरी, (१६) सत्य-नारायण व्रत कथा, (१७) कुलदेवता स्थापन विधि, (१८) अनुष्ठानीय सुन्दरकाण्ड रामायण, (१९)सावित्री सत्यवान

नाटक, (२०) तंत्रोक्त मिथिला माहात्म्य। 'अनुष्ठानीय सुन्दरकाड रामायण' की प्रस्तावना में इनके पुत्र वनखडी दास जी ने लिखा है कि इनकी बनाई हुई सातो कांड रामायण अप्रकाशित है। द्रव्याभाव से पूरा न प्रकाशित कराकर सुंदर कांड ही प्रकाशित कराया गया।

काचीनाथ झा 'किरण'—धर्मपुर (दरभंगा) निवासी हैं। मैथिली के अच्छे लेखक हैं। 'चन्द्रग्रहण' इनका उपन्यास है। इसमें 'सेमरिया घाट' के मेले का वर्णन है, जिसमें एक लड़की को मुसलमान भगा ले जाता है। इधर उन्होंने एकांकी नाटक लिखना प्रारम्भ किया है तथा कुछ नाटक प्रकाशित भी हुए हैं। इनकी कविताएँ भी समसामयिक पत्रों में प्रकाशित होती रही हैं।

भोला झा—अच्छे उपन्यासकार हैं। 'मनुष्यक मोल' और 'विवाह' इनकी श्रेष्ठ रचनाएं हैं। पहले में सामाजिक और आर्थिक स्थिति का विवेचन है। और दूसरे में अनमेल विवाह की बुरी परिस्थति का अच्छा चित्रण हुआ है।

पुण्यानद झा—'मिथिला दर्पण' इनकी श्रेष्ठ रचना है। इसकी रचना शैली पर बंगला साहित्य का प्रभाव है, किन्तु कथावस्तु मिथिला की है। कहीं-कहीं रहस्यवादिता की झलक है। कथोपकथन में विविधता है।

गंगापति सिह, बी॰ए॰—पचही-मधेपुर (दरभंगा) निवासी। कलकत्ता विश्वविद्यालय में हिंदी और मैथिली के अध्यापक

रह चुके हैं। मैथिली रचनाओं में 'बाल व्याकरण', 'रचना निबंध', 'जयचंद पराजय' और 'सुशीला' उल्लेखनीय है। 'जयचन्द पराजय' ऐतिहासिक और 'सुशीला' सामाजिक उपन्यास हैं। इसमें बाल विधवा की समस्याओं का अच्छा चित्रण है।

योगानद झा—प्रगतिशील विचारों के उपन्यासकार हैं। 'भलमानुष' इनका श्रेष्ठ उपन्यास है। इसमें मिथिला में प्रचलित कौलीन्य प्रथा पर तीव्र आघात किया गया है। इसके कथानक द्वारा यह प्रतिपादित किया गया है कि मनुष्य की प्रतिष्ठा गुण से होनी चाहिए, कुल से नहीं। यह दुखान्त उपन्यास है। प्रकाशित होते ही इस पर विवाद उठ खड़ा हुआ। इसकी प्रेरणा से कई उपन्यास निकले, किन्तु उनमें वह शक्ति नहीं है—अधिकतर प्रतिक्रियात्मक हैं। इधर इन्होंने च्यवन और सुकन्या की कथा को ध्यान में रखकर एक एकांकी की रचना की है, जिसका नाम है--'मुनिक मतिभ्रम'।

शारदानंद झा–'भलमानुष' के जवाब में इन्होंने 'जयवार' नामक उपन्यास लिखा। इसमें मैथिल ब्राह्मणों के निम्नतम स्तर जयवारों की बुराइयो का वर्णन है। इसमें कला का स्तर 'भलमानुष' जैसा नहीं है।

अवधनारायण झा—इन्होंने 'भलमानुष' के जवाब में 'बनमानुख' लिखा। किन्तु इसमें औपन्यासिकता कम और

विवाद ही अधिक है। इन दोनों उपन्यासों से भी 'भलमानुष' की श्रेष्ठता ही प्रतिष्ठित होती है।

डा० ब्रजकिशोर वर्मा—इनके उपन्यास खंडित रूप में ही प्रकाशित हो सके हैं, इसलिए अभी इन पर निश्चित रूप से कुछ लिखा नहीं जा सकता। हां, भाषा प्रवाहपूर्ण तथा वर्णन स्वाभाविक है।

वैद्यनाथ मिश्र 'यात्री' (नागार्जुन)—आधुनिक हिंदी जगत् के श्रेष्ठ कवि और उपन्यासकार हैं। मैथिली में भी इनकी अनेक रचनाएँ हैं। 'पारो' (१६४६) नागार्जुन का मैथिली भाषा का उपन्यास है। आपने पाश्चात्य विचारों को अपने उपन्यास प्रश्रय देते हुए तथा फ्रायड के सिद्धान्तों का समावेश करते हुए एक नवीन प्रयोग किया है। भाषा तो इनकी ऐसी है कि क्या मजाल कि कोई एक बार हाथ में लेकर बिना उसे समाप्त किए छोड़ दे।

इधर इनकी एक रचना 'नवतुरिआ' (उपन्यास) प्रकाशित हुई है। इस पुस्तक का हिंदी रूप भी प्रकाशित हो चुका है— 'नयी पौध' के रूप में। इसमें लेखक ने साम्यवादी विचार से प्रभावित होकर तथा समाज में अनमेल विवाह से उत्पन्न कुरीतियों को बढ़ते देखकर उस दिशा में कुछ संशोधन करने के निमित्त लेखनी उठाई है। चित्रण सफल हुआ है।

अभी ये 'बलचनमा' का मूल रूप प्रकाशित कर रहे हैं।

डा० श्री सुभद्र झा—(ज० १६११ ई०) भाषा शास्त्र के प्रकांड पण्डित हैं। पटना विश्वविद्यालय ने इन्हें इनकी थीसिस 'मैथिली भाषा की उत्पत्ति' पर डी० लिट० की उपाधि दी है। फ्रांस से भी आपने डी० लिट० की उपाधि प्राप्त की है। भाषा विज्ञान सम्बन्धी इनके अनेक लेख शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं।

गद्य के क्षेत्र में भी इनका अपना स्थान है। बहु-भाषा-विद होने से इन्होंने इटालियन भाषा से अनुवाद कर 'मीना' नामक उपन्यास धारावाहिक रूप से 'मिहिर' में प्रकाशित कराया। फ्रांस में रहने के कारण वे वहाँ से पत्र के रूप में अपनी प्रवास यात्रा का अनुभव प्रकाशित करते रहे, जो 'प्रवास जीवन' के नाम से प्रकाशित है। इन्होंने कादम्बरी का भी अनुवाद किया है।

अभी-अभी इन्होंने विद्यापति के नेपाल पुस्तकालय में प्राप्त हस्तलिखित पदों के आधार पर 'विद्यापति गीत संग्रह' (दि सांग्स आव विद्यापति) प्रकाशित कराया है। विद्यापति की भाषा पर इतना महत्त्वपूर्ण, तथा शोधपूर्ण लेख अभी तक कहीं भी प्रकाशित नहीं हुआ था।

स्व० पं० शिवनदन ठाकुर—'विद्यापति विशुद्धपदावली' मैथिली साहित्य परिषद् से प्रकाशित। विद्यापति पर इन्होंने अनेक खोजपूर्ण कार्य किये हैं। हिंदी भाषा में तो इनकी रचना 'महाकवि विद्यापति' अमर हैं ही। मैथिली को भी इनकी 'विशुद्ध विद्यापति पदावली' पर गर्व है।

युग के प्रभाव से कोई भी लेखक अपने को अलग नहीं रख सकता। अंग्रेजी भाषा और साहित्य का प्रभाव मिथिला पर नहीं पड़ा, ऐसा कहना असंगत ही नहीं होगा, परन्तु अन्यायपूर्ण भी। अंग्रेजी साहित्य ने नवयुग के लेखकों को काफी प्रभावित किया है। किसी को अगर इस भाषा की शैली पसन्द आई तो किसी को कुछ और ही। इससे विशेष प्रभावित कुछ कहानी लेखक तथा एकांकी लेखक प्रतीत होते है।

श्री *उपेन्द्रनाथ झा 'व्यास'*—यद्यपि ये व्यवसाय से इंजिनियर हैं, किन्तु इनकी लेखनी साहित्य मे काफी प्रौढ़ है। इनका उपन्यास 'कुमार' अपने ढंग का अकेला उपन्यास है। इसके चित्रात्मक वर्णन को देखकर कोई भी पाठक अंग्रेजी के हार्डी का स्मरण कर सकता है। सामाजिक विषय विशेष पसन्द करते हैं, तथा उपदेशप्रद शैली मे उसे समाप्त करते हैं। इनकी रचना मे प्राचीन तथा अर्वाचीन एवं पूर्व तथा पाश्चात्य शैली का सुंदर सयोग हुआ है। इनका एक कहानी संग्रह 'विडम्बना' भी प्रकाशित हुआ है जिसमे समाज के विभिन्न पहलुओं पर ध्यान दिया गया है।

इसके अतिरिक्त मुक्त छन्द में 'संन्यासी' नामक एक खंडकाव्य भी प्रकाशित है।

प्रो० श्री *उमानाथ झा*—आप मुजफ्फरपुर लंगट सिह कालेज में अंग्रेजी के अध्यापक हैं। अंग्रेजी भाषा तथा साहित्य के अध्यापक होने से इन्होंने मैथिली में उस टेकनिक

पर अनेक कहानियाँ लिखी हैं। इनका एक समह 'रेखाचित्र' के नाम से प्रकाशित भी है। इनकी भाषा मँजी हुई तथा प्रवाहपूर्ण होती है। इनके 'माधव' जी, 'आध घंटा' आदि कहानियाँ काफी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी हैं।

प्रो० श्री रमानाथ झा—चंद्रधारी मिथिला कालेज में अंग्रेजी के अध्यापक हैं। इन्होंने दरभंगा राज लाइब्रेरी मे लाइब्रेरियन के पद पर रहकर 'मैथिली साहित्य-पत्र' का सफल सम्पादन किया तथा दस महत्त्वपूर्ण ग्रंथ प्रकाशित किये। इनके अनेक शोधपूर्ण लेख प्रकाशित हो चुके हैं। इनका महत्त्वपूर्ण कार्य मैथिली साहित्यिक शैली मे एकरूपता लाने का प्रयास तथा वैज्ञानिक रीति से एक शैली निर्धारण है। इनकी शैली यदि सर्वमान्य नहीं है, तो बहुमान्य अवश्य है। इस दिशा में इनका प्रयास स्तुत्य है। जैसा प्रयास हिंदी में द्विवेदी जी ने किया था वैसा ही इन्होंने किया है। आपने मैथिल पंजी का शास्त्रीय अध्ययन किया है तथा उससे अभी तक अनेक अज्ञात विषयों को प्रकाश में लाये हैं।

—:o:—